Chapter - 5

पंचम अध्याय

सूर्यदीन यादव के उपन्यासों का तात्विक विवेचन

उपन्यास की संक्षिप्त कथावस्तु :

डॉ. सूर्यदीन यादव के कथा साहित्य में उनके कथासंग्रहों और उपन्यासों की संख्या लगभग एक दर्जन या उसे अधिक ही है । उनके उपन्यास साहित्य के अवलोकन से एक बात स्पष्ट होती है वह है उनके कर्मठ और संघर्षशील व्यक्तित्व के अनुरूप उनके उपन्यास साहित्य में चित्रित नए और संघर्षशील कथापात्रों की उपस्थिति । इन्हीं पात्रो के बल पर यादवजी अपनी कुछ अनूठी और दिलचस्प कथा कृतियों का सृजन किया था, जिनके सम्यक विवेचन के उपरांत ही उनके समग्र उपन्यासों का मूल्यांकन किया जा सकता है। यादवजी के उपन्यासों की संख्या निम्नानुसार है ।

(१)	दूसरा आँचल	१९९१
(२)	माँ का आँचल	१९९२
(३)	ममता उपन्यास	२००२
(४)	अँधेरा जहाँ उजाला	२००३
(५)	चौराहे के लोग	२००४
(६)	प्रेमश्रोत	२००६
(७)	जमीन उपन्यास	२००६
(८)	एक सफर के मुसाफिर	२००९

(१) दूसरा आँचल उपन्यास - खोली मजदूरों का खुला दस्तावेज

'दूसरा आँचल' उपन्यास साबरमती नदी के किनारे बसे हुए गाँव सादरा एवं अहमदाबाद के लोकजीवन का यथार्थ दस्तावेज है । यह उपन्यास विशेष रूप से अहमदाबाद महानगर के मीलो कारखानों में काम करने वाले मजदूरो के जीवन का सच्चा चित्र प्रस्तुत करता है । कथारम्भ सादरा गाँव से अहमदाबाद शहर परिवेश को उभारती हुई उत्तरप्रदेश और गुजरात के द्विपरिवेशीय ताने-बाने से बुनी गई है । सूत्रधार नायक अमित के माध्यम से प्रत्यक्ष और कभी परोक्ष रूप से कथा कही गई है । बीच में स्मृतियों द्वारा अमित अपने गाँव

को देख लेता है। लेखक उत्तरप्रदेश के गाँव की समस्याओं को गुजरात की ग्रामीण समस्याओं के साथ एक जैसा देखता है । दूसरा आँचल लेखक की कर्मभूमि है दूसरा परिवेश है दूसरे लोगों के साथ नाता है । वह दूसरा और आँचल भी अपनी जनेता का आँचल लगता है, कथाक्रम काफी सघन है, जो उत्तरप्रदेश और गुजरात जैसे दो परिवेशों को एक साथ जोड़ता है ।"[१]

यह उपन्यास मूलत: अहमदाबाद नगर के प्रेसों और कारखानों में काम करते पूर्वोत्तर प्रदेश के मजदूरों के जीवन की बुनियादीं समस्याओं पर आधारित है । अहमदाबाद जैसे बड़े शहर में मजदूरों और श्रमिकों का जीवन बहुत ही दयनीय लगता है । उनके खाने-पीने और रहने का अच्छा ठिकाना नहीं है । वे चाली की ख़ोलियों में रहते हैं । मिलों कारखानों में हाड़ तोड़कर सख्त परिश्रम करनेवाले लोगों की व्यथा और दैनिक दशा का यथार्थ चित्र 'दूसरा आँचल' प्रस्तुत करता है । यथा-'खोली क्या है ऐंड़-बेंड़ बल्ली और कड़ी पर बिछीं हुई खपड़ा-नरियां की छाजन । ईंट की नंगी दीवारें । एक बड़ा सा कमरा, पीछे छोटी रसोई और आगे दो खटिया का ओसारा । ओसारे में भी बरसाती या तिरपाल की परछती के बीच चार-चारपाइयाँ । चाली में सभी खोलियों की यही दशा हैं ।

प्रधानत: परमानंद जैसे अंगूठा छाप लोग मजदूरी करते है और कलम पकड़ने वाले चंदन इन्स्पेक्टर, प्रोफेसर दवे जैसे लोग नौकरी । दोनों के रहन-सहन में अंतर बहुत कम है । मजदूरों का जीवनस्तर बहुत निम्न है । उनके खाने-पीने और रहने का अच्छा ठिकाना नहीं है । वे चाली की खोलियों में रहते हैं । एक ही खोली में उनकी स्थिति का अनुमान किया जा सकता है ।

यह तो उनका बाहरी रंग-ढ़ंग है, भीतरी स्वरूप है -"सबके एक-एक बाक्स और खूँटी या अरगन पर टंगे कुछ ओढ़ने बिछाने या पहनने के कपड़े । दो-चार बरतन, तवा, तपेली, लोटा, थाली, कटोरी, करछूल, चिमटा, बाल्टी के सिवा कोई कीमती सामान नहीं। कुछ डिब्बे टीन के । सामान जो भी है सब धुएँ से काला हो गया है । लोग कहते है कि शहर में पंखा लगा होता है, लाईट जगमगाती है और यहाँ तो काली घटा घिरी रहती है ।"[२] ये खोलियाँ महानगर का अनिवार्य हिस्सा है, लेकिन उनकी बदहाली साधारण गाँव जैसी है । इसीलिए जब अमित पहली बार अहमदाबाद की इन चालियों में पहुंचा तो उसे लगा कि यह शहर नहीं है । प्रदेश नहीं है, चाली नहीं । अपना गाँव, अपना

आँचल है । वह गंवई आँचल जहाँ मैं गोरु चराया करता था । फुटपाथी झोंपड़ियों की दशा इनसे भी बदतर है ।

इस उपन्यास में पूर्वी उत्तरप्रदेश के गाँवों और अहमदाबाद की खोलियों की समस्याओं को एक दूसरे के समानान्तर या आमने-सामने रखकर दिखाया गया है । गाँव हो या महानगर की चालियाँ, दोनों की समस्याएँ अपने-अपने ढ़ंग की है, लेकिन उनकी स्थिति एक जैसी है । आज उनका ध्रुवीकरण काफी स्पष्ट है । चाहे गाँवों के काम करनेवाले श्रमिक हों या महानगरों की मिलों में काम करने वाले मजदूर, उन्हें हंमेशा दबाया जाता है । इसी कारण दबाये जानेवाले लोगों की स्थिति एक जैसी है । इसी प्रकार उत्पादन शक्ति के स्रोत चाहे गाँव के जमीदार के हाथ में हों, चाहे महानगर की मिल मालिक के हाथ में, वे एक जैसे मेहनतकश लोगों का शोषण करते हैं । उनका व्यवस्थागत चरित्र भले भिन्न हो, लेकिन क्रिया - कलाप एक जैसा है । शासन तंत्र से समझौता करने में ये ही अधिक कामयाब होते हैं । गाँव का मेहनतकश जब काम की टोह में महानगरों में आता है तब वह मजदूर बन जाता है, लेकिन उनकी स्थिति में बुनियादी तौरपर कोई खास बदलाव नहीं होता ।

यादवजी ने शहरी मजदूरों की संघर्षयात्रा, काहिली और नारकीय जिन्दगी का आलोचनात्मक दस्तावेज प्रस्तुत करके एक रचनाकार का दायित्व निबाहा है । उनकी कमजोर नस है कि वे मजदूरों की उन मर्मान्तक स्थितियों के भीतर नहीं झाँक पाये। जिनके कारण वे खोलियों में बदतर जिन्दगी बिताने के लिए मजबूर होते हैं । वे समस्याओं के ऊपर ही ऊपर चक्कर काटते हैं । अमित के कथन से स्पष्ट है कि वह तात्कालिक प्रतिक्रिया में काफी उल्टा सोचता है । पर अपने चाचा, दादा की उन परिस्थितियों की गहराई से छान-बीन नहीं करता जिनके कारण वे मिलों में काम करने को ही विवश हो गए है।

वास्तव में महानगरों में आज उनकी इस दुर्दशा की उत्तरदायी है आर्थिक व्यवस्था। इस व्यवस्था का यह व्यापक षड़यंत्र होता है कि मजदूर वर्ग केवल खाने - कमाने में ही उलझा रहे । मजदूरों की हड़ताल का वर्णन यादवजी ने बड़े उथले ढ़ंग से किया है। जब मेहनतकश जनता की समस्याएँ एक जैसी हैं, तो वह चाहे गाँव की हो या महानगर की, क्या अंतर आता है ? अमित सादरा में मोहन धोबी के घर निमंत्रण खाने जाता है तो देखता है कि यहाँ कोई भेदभाव नहीं । सब बूट पहनकर परोस रहे हैं । बिना कपड़ा उतारे । सब जातियाँ साथ खाने बैठी हैं । अपने वहाँ एक जाति दूसरी जाति के साथ बैठकर खा ही नहीं सकती । लगता ही नहीं जाति, धर्म या कोई संप्रदाय होता है। एक ही आचार-विचार वाले एक परिवार के साथ हैं । काश इसी एकता के दर्शन पूरे

विश्व में होते तो विश्व का आँचल एक लगता । फिर दो माँ नहीं होती । देश-परदेश नहीं होता। गाँव-शहर नहीं होता । सारी जमीन सारा आँचल एक लगता । यहाँ भावुकता सदिच्छा बन बैठी है । क्या खान-पान का भेदभाव खतम हो जाने से जाँति-पाँति की समस्या हल हो जायेंगी ? जाति व्यवस्था का तंत्र उससे कहीं अधिक सूक्ष्म और जटिल है । शहरों और कस्बों में खान-पान और जाँति-पाँति की ढ़िलाई का प्रधान कारण औद्योगिक और अर्थव्यवस्था का दबाव है । जिसमें लोगों का ध्रुवीकरण अर्थ के भीतर अपना मुँह छिपा लेते हैं ।

(२) माँ का आँचल उपन्यास की कथावस्तु :

'माँ का आँचल' उपन्यास गोमती नदी के किनारे पर बसा हुआ जिला सुल्तानपुर, उत्तरप्रदेश के ग्राम्यांचल एवं लोकजीवन को उजागर करता हैं । इसमें दो मुख्य पात्र चैता और फगुनी मात्र नायकत्व ही नहीं निभाते बल्कि किसानों के लिए साल के दो महीने चैत, फागुन जो महत्त्वपूर्ण होते हैं, के प्रतीक बन जाते हैं । ये समाज के खूंखार भेडियों से टकराते हैं और एक नवीन चेतना का संचार करते हैं ।

उपन्यास का प्रारंभ चैत (अप्रैल) महीने की कटिया से होता है । सुबह कटिया पर जाने के लिए रात में पहुँच ज़ाते हैं । चैता जो इसका नायक भी है खेत काटता है हँसिया की धार खत्म हो जाने पर पत्थर से घिसकर धार बनाता है । इसी बीच थोड़ी राहत भी लेता है उसमें जब नई ताजगी आ जाती है तो वह बारहमासा अलापता है । प्रत्येक गाँवों व घरों में जमीन जायदात के लिए अक्सर झगड़े होते रहते है, यहाँ भी फरवार में फसल रखने के लिए हो रहे झगड़े का एक चित्र प्रस्तुत है – "देखो, हमसे ज्यादा टिर्र-फिर्र मत करो । सोझ कहता हूँ ..... जमीन सरकार की । और तुम सरकार के दामाद ! ले लेना फिर देखूँगा ।"[३] शिक्षा के इतने विकास के बावजूद अभी भी भूत-प्रेत, जोग-टोटका जैसा अंधविश्वास हमारे समाज में अपना स्थान बनाये हुए हैं । हर गाँव में एक-दो सदानंद होते हैं, जो पूरे गाँव के आवागमन व दुःख-दर्द की खबर रखते हैं। कब, कौन, कहाँ जा रहा है, क्या कर रहा है, किससे मिलता है, किसे कौन सताता है आदि-आदि । और उसे दूर करने का भी यथाशक्ति प्रयास करते हैं ।

किसानों के लिए खेती ही उसकी आत्मा है और बिना बरसात खेती नहीं होती। सूखा पड़ जाने पर वर्षा हो, इसके लिए औरतें हल चलाएँ तो बरसात होती है । ऐसी किवदंती समाज में है । इसके साथ ही मेघ राजा को खुश करने के लिए हर घर के दरवाज़े पर जाते हैं और वहाँ पानी डालकर "काली कलौटी" खेलते हैं तब बरसात होती

है । इसका सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया गया हैं । सूखा पड़ जाने पर मध्यम वर्ग व निम्न वर्ग की जो दशा हो जाती है उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती । गाँव के निम्न वर्ग की महिलाएँ गोद में बच्चे लिए हुए होली के त्यौहार पर बायन लेने आई हैं । उनके शरीर पर फटे पुराने कपड़े हैं जो एक ओर ढाँकने पर दूसरी ओर खुल जाते हैं । लेखक इस चित्रण के माध्यम से भारत की उन सभी महिलाओं की बात कर रहा है । जिनके तन पर न तो कपड़े हैं और न ही पेट भरने को दाना । गरीब औरतों का नहीं, लगता हैं भारत माँ के आँचल की खिड़की, उस खिड़की से केवल मोतीपुर के गाँव की नहीं, बल्कि पूरे भारत की गरीबी झाँक रही है । .... "उन छिद्रों से नाजुक अंग ही नहीं, बल्कि अनकही संवेदना बेवसी, लाज, संकोच और बदहाली – गरीबी और अभाव, भय के दृश्य दिखाई पड रहे हैं, मुँह सब छिपाए हैं आँचल में ।"[४] राजा-महाराजाओं, जमींदारों, लम्मरदारों, सेठ-साहूकारों द्वारा देश-विदेश के हर गाँवो में खेती-बारी, जर-जमीन, धन-दौलत के लिए झगड़े होना सामान्य बात है । लोग थोड़ी-सी जमीन के लिए मर मिटते हैं, हिस्सा-बखरा के लिए भाई-भाई, दोस्त-दोस्त का खून भी कर देता है । आज समाज को जरुरत है चेत्तू जैसे भाई की । वह बचपन से बड़े भाई की मार खाता है, पुजारी चैतु का सारा हिस्सा ले लेने के लिए उसे घर से निकाल देता है चेतू शहर भाग गया किन्तु आज जब वह शहर से लौटा हैं तो बडे भाई के घर ही आया । लोभी पुजारी को अपना आधा हिस्सा छिन जाने का डर है इसलिए चेतू को घर से निकाल देता है, फिर भी चैतू कहता है – "भइया, बरबरा बताने नहीं, मैं हिस्सा देने आया हूँ । सोचा कमाई का थोड़ा भाग भइया भाभी को दे आँऊ । ..... हमें हिस्सा बखरा की क्या जरुरत हैं । हिस्सा लेना होता तो पहले ही ले लिया होता ।"[५] चैतू भरत-का भाई बनना चाहता है, लेकिन पुजारी राम नहीं बन पाते । वर्तमान समाज में भरत, चैतू, राम जैसे भाई का ह्यस होता जा रहा है और पुजारी जैसे भाई की संख्या में वृद्धि हो रही है ।

चैतू पुजारी का भाई होने के बावजूद जाति की चमारिन फगुनी को अपनी पत्नी बना लेता है, वह कहता है कि हम जो भी करेगें खुले आम करेगें, भ्रष्ट लोगों की तरह लूक-छिपकर नहीं । भाई के घर से निकल कर वह फगुनी के घर जाने को तैयार होता है वह कहता है- "सारा गाँव अपना है । सारे घर अपने है । मैं सबका हूँ । सारी मिट्टी पूरे आँचल का हूँ । मैं कहीं भी रह सकता हूँ । क्या फर्क पड़ेगा ? फगुनी का घर भी इसी मिट्टी से बना है वह भी इसी मिट्टी से पली है । इसी आँचल के साए में साँस लेती है । उसका दाना-पानी सब इसी मिट्टी की उपज है । स्थान और खाने में हुआ – छूत नहीं लिखा होता । एक ही माँ के आँचल से लगे हुए हम अलग-अलग

कैसे हुए ? माँ का आँचल विशाल हैं । अपार है । असीमित है । अमिट है । मनुष्य एक ही आँचल के टूकड़े हैं । मैं जाति धर्म नहीं मानता । मैं सिर्फ मनुष्य हूँ ।"[६] राजकरन जमीदार है उसका जुल्म इस गाँव के सभी पर होता है । 'माँ का आँचल' एक भारतीय संस्कृति की झलक पेश करता है । गुडियों का त्योहार, सावन के झूले । सावन में फगुई-पंचमी, तीज त्योहार पर बिट्टनन के भइया घुघरी लेकर आते हैं । पर्व त्योंहारों के बहाने हम एक दूसरे के सगे-संबंधियों, बहन-बेटियों, गरीब-दुखियों जातियों-पर-जातियों की मदद करते हैं । जिससे एकता और समानता का भाव पैदा होता है ।

बसावन फगुनी पर बलात्कार करने के लिए पशु समान हमला करते हैं, वह शेरनी की तरह अपनी बहादुरी का परिचय देकर, बसावन के दाँत खट्टे कर देती है । यह दृश्य वास्तव में कितना द्रावक है और पुरुष की नराधम पराकाष्ठा भी समझने लायक है। यादव जी की कलम कल्पना का सादृश्य आज भी पूरे देश में प्रतिदिन पढ़ने को मिलता है। उंगरवा को लाठी से तीन गुँड़ो ने ऐसी पिटाई की उसकी हड्डी पसली तोड़कर अध मरा कर दिया । राजकरन ने अपने अपमान का बदला ले लिया । तीन-तीन गुंडे मारते रहे और पूरा गाँव मुँह बाये तमाशा देखते रहा । एक भी जवान न था जो उसे इस तरह कुचलने से बचाता या राजकरन को ललकारता । गाँव के भोले लोग अपनी मिट्टी से इतना प्रेम करते हैं कि वह जुल्म भी माँ की ममता का एक अंग हो । इस तरह उसी मिट्टी में जीवन गुजारने पर तैयार रहते हैं । सोच भी नहीं पाते कि वह कभी गाँव का आँचल छोड़कर जायेंगे ।

गर्मी की तपिश में किसान खेत जोत रहे हैं और जब प्यास से गला सूखने लगता है तब लडकों को दौडाकर गुड़ पानी मँगाते हैं । पत्नी जब गुड़ पानी लाती है तब उसे किस तरह धिक्कारते हैं, देखते नहीं बनता हैं । और पति की वेदना कोई नहीं समझता वह जब कहती हैं "भाई-भाई परान खा जाते हैं । कहाँ-कहाँ का होई ? चौमुख औरत टूही जाती है जेकर बारी आंई वो ही चिचोरने लगता है । जैसे फलानी की देह एही बदु बनी हो । तुम्हारी बारी आई तुम दुहि लिये । .... बारह मासिन हूँ न ।"[७] और बारहमासी पौधे की तरह बारहों महीने खिली रहे और सब उसे निचोडते रहें । औरत को गाँव में कभी आराम नहीं, वह भी जहाँ दरिद्रता गरीबी हो ।

बसावन सुबह का झुटपुट समय देखकर फगुनी पर टूट पड़ा । बाल खींच लाचार बना गिराना चाहता है । अरे मरद है तो मरदानी बता ? औरतपन का नाजायत फायदा उठाता है ...... मरद होकर चला है औरत से लड़ने । जबरदस्ती मुकाबला करने । अरे किसी मरद से पंजा मिला । फगुनी ने वह कस के दाँत जमाये कि खून की धार निकल

पड़ी लातों-लातों खूब लतिआया । वह पस्त हो पीछे हट गया । इसी जगह त्रस्त यादवजी ने नारी चेतना जगाई । बसावन भाग जाता है तब वह फूट-फूट कर रो पड़ती है । तभी सदानंद उसे समझाते हैं और उसे अपने समाज की सभी नारियों की पीड़ा से परिचय कराते हैं । - "बेटी तू अकेली कैसे लड़ेगी इन राक्षसों से । दुनिया बहुत बड़ी है । नारी में बड़ी शक्ति है । यदि हर नारी इसी तरह जागृत बने तो समान में होतें जुल्म अत्याचार बंद हो सकते हैं । आज पता चला कि नारी में इतनी बड़ी महान शक्ति भरी पडी है । लेकिन नारी की शक्ति को उभरने का मौका नहीं देते । नारी के विकास के रास्ते बंद हैं । नारी को बंधनो से मुक्त होना चाहिए । बहादुर नारी की शक्ति की जानकारी नारी जगत को जानना चाहिए । हर नारी को अपनी शक्ति की पहचान होनी चाहिए ...... बेटी तू पढ़ी होती तो समाज, देश के लिए बहुत काफी कुछ करती । मगर .... ।"[८]

उपन्यास में जगह-जगह पर नारी पीडा, शोषण के साथ-साथ नारी चेतना, नारी विद्रोही, स्वरूप एवं नारी शक्ति का परिचय मिलता है । नारी चेतना तो प्रसर चुकी है। परन्तु उसे प्रबल बनाने में समाज के किसी न किसी रूप में छिपे पुरुष का झूठा अहम आडे आ रहा है । इस तरह 'माँ का आँचल' उपन्यास की जितनी प्रशंसा की जाय कम है । अंत में सच्चे प्रेमी चमार जाति की फगुनी ने न जाने कितने ब्राह्मणों, ठाकुरों, जमीनदारों एवं अहीरों आदि कामुक पुरुषों को चमार बनने नहीं दिया ।

खेत में जुताई-बुवाई, निराई और खेतों की कटाई आदि इतने मर्मस्पर्शी विवरण हैं कि ऐसे लगता है मानों हम खेत, सिवान में हरी-भरी फसलों के बीच से गुजरते हुए हरी पत्तियों की हरितिमा और फूलों की हँसी-मुस्कराहट, फलों के बिना खाये ही स्वाद प्राप्त कर रहे हैं । खेत परिवेश के इतने मर्मस्पर्शी चित्रण हैं कि पढ़ते-पढ़ते पाठक भी हँसिया पकड़कर फसल काटने लगे । विचारे निर्धन किसानों की निर्दयी भी उस दारिद्रय को जीवन प्रदान कर रही है । हमीर ग्राम्य आँचल में जब हम विवरण करते हैं तो ऐसा लगता हैं ग्राम्य बासियों को अपने अभावों का ज्ञान होते हुए भी संतोष का गर्व हैं, जो उनके जीवन को उस ग्राम्य धरती की मिट्टी से जकड़े हुए हैं । वे किसी हालत में जन्मभूमि 'माँ का आँचल' छोड़ना नहीं चाहते ।

(३) ममता उपन्यास की कथावस्तु :

ममता उपन्यास की कथावस्तु ढ़ाहा गाँव के एक संयुक्त यादव परिवार की कथा से जुड़ी होने के बावजूद समग्र गाम्यांचल दृष्टि उभर आती है सतपाल, जसवीर, महीपत, रामरतन और रिषपाल ये पाँचो भाई संयुक्त परिवार के साथ एक गाँव में रहते हैं । पानी

पर छाई काई की तरह माँ की ममता में बंधा परिवार । परिवार बहुत बड़ा होने के कारण घर में हंमेशा खाने-पीने, रहने-बैठने की तकलीफ होती है । फिर भी माँ की ममता में संयुक्त परिवार बंधा रहता है । और गाँव समग्र घटनाएँ स्वयं ही उभर आता है । इसलिए संयुक्त परिवार में चालाक औरतें ज्यादा खाना परोसवा कर बच्चों के लिए क्लेवा के रूप में रख लेती । कोई बाहर गया होता और रात को देर से लौटता तो उसे भूखा पेट ही सो जाना पड़ता । दूसरे तीसरे दिन कोई न कोई भोजन किये बिना ही सो जाता । बड़े परिवार में पता ही नहीं चलता किसने भोजन किया और कौन खाये बिना ही रह गया। बड़े भाई सतपाल का देहान्त हो गया है, जसवीर घर में खेतीबारी का काम करता है। महीपत दिल्ली में रहकर माली की नौकरी करके घर की आर्थिक मदद करता है । रामरतन ने ननिहाल में ही अपना सबकुछ बसा रखा है तो रिसपाल बम्बई में P.S.I. के पद पर कार्यरत है । अचानक ही दुरपती के विधवा हो जाने पर ममता और उसका पति दूसरी शादी करने की भी बात करते हैं लेकिन ममता और जसवीर के प्रेम को देखकर दुरपती दूसरी जगह जाने से इन्कार कर देती है । दुरपती का यौवन अभी गुलाब की तरह खिला हुआ था । गोरा रंग कसेला शरीर जो भी देखता दुरपती की तरफ आकर्षित हो जाता । यही कारण है कि दुरपती और उसका जेठ जसवीर धीरे-धीरे एक दूसरे के करीब आते गये । ममता सब कुछ जानते हुए भी अन्जान बनी रहती है । क्योंकि वह सोचती है कि शारीरिक भूख की तृप्ति के लिए यदि दुरपति घर छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति के साथ सम्बन्ध स्थापित करेगी तो उनकी कलई खुल जायेगी । और यह सम्बन्ध सामाजिक सभी रीति-रिवाज, परम्पराओं को तोड़कर ब्रजबल नामक पुत्र को जन्म देती है । तो स्वयं जसवीर अपमानित करके सामाजिक डर से दुरपती को घर से निकलने की कोशिश करता है । उस समय ममता इसका प्रतिकार करती है । और जसवीर को डाँटकर समझाती है कि "स्त्रियों के जिस्म से खिलवाड़ करने वाले पुरुषो में से तुम भी हो । तब तो मेरी कल से धीरे से उठकर दबे पाँव सरककर दुरपती के पास चले गये थे और रंगरैलिया मना रहे थे । मैं जानकर भी अंजान बनी रही ।"[९] क्योंकि राजकली बता रही थी कि विद्यालय के प्रांगण में पतले-पतले भाँटे पड़े मिले थे, सफाई करनेवाली को । विद्यालय की आचार्या ने लड़कियों से पूछ-ताछ की थी । पर पता नहीं चला था कि भाँटा कौन लाई थी । अप्रकृतिस्य वस्तु से शारीरिक भूख नहीं मिटाई जा सकती है । इन्ही सब कारणों से ममता सब कुछ जानते हुए भी जसवीर और दुरपति को मिलने देती थी । दुरपती और जसवीर का प्रेम धीरे-धीरे रंग लाने लगा । दुरपती का पेट दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था । यदि जसवीर चाहता तो दुरपती को उस दोष से बचा सकता था । दुरपती भी चाहती तो ऐसा नहीं होने देती । इसलिए कि गलती स्त्री-पुरुष दोनो

की थी, पेट बढ़ने के उत्तरदायी स्त्री-पुरुष दोनों थे । जसवीर के सहयोग से दुरपती ने एक बेटे को जन्म दिया था । दुरपती लाज में सिमटी धर्म मे घसीं जा रही थी । धरती फट जाती तो वह जरुर समा जाती । धरती में सीता माँ की तरह । जसवीर और दुरपती के बीच रहे अनैतिक सम्बन्धो को जानकर भी ममता दुरपती पर प्रेम बरसाती रही । एक स्त्री दूसरी स्त्री का दुश्मन नहीं मित्र होती है । ममता दुरपती के प्रति क्रोध जताने के बदले उस पर स्नेह वात्सल्य बहाती रहती थी । पक्षी ही पक्षी की भाषा को समझ सकता है । स्त्री-स्त्री को अच्छी तरह समझ सकती है। दर्दी, दर्दी के दर्द को समझ सकता है। ममता जानती थी कि हर स्त्री को अपनी भूख होती है वह भूख को दबाये नही रख सकती । भूख किसी भी प्रकार की हो, भूख तो भूख ही होती है । जसवीर का अनहद प्यार उसे मिल ही रहा था । प्यार पवित्रता तक सीमित हो तो उसकी पूजा की जाती है । प्यार पवित्र ही बना रहे ऐसा लोग चाहते भी है लेकिन फूल बगीचे में खिला रहे, उसे कोई तोड़े नहीं । यह नामुकिन सा लगता है। लेकिन जब प्यार चर्राता है तो वह नदी के बाँध-सा टूट पड़ता है । ममता अकेली जसवीर को बाँध न पाती । मेरा विरोध करने पर भी वे दोनों छुपे घर के बहार मिलते । और घर की बात बाहर गंधा जाती। लेकिन जब जसबीर अपना पाप छुपाने के लिए दुरपती को घर से निकालने की कोशिश करता है तब ममता कहती है कि अब तुम इस बात का प्रमाण दे रहे हो । कि पुरुष मतलबी एवं स्वार्थी होते हैं । अनुकूलता में तो सभी साथ देते हैं । जो प्रतिकूल परिस्थिति में भी साथ तब तक देता है, जब तक उसका मान सम्मान होता है । जब पुरुष समाज या बिरादरी द्वारा अपमानित होने लगता है । तब वह अपने उत्तरदायित्वों, यहाँ तक की अपनी मर्दानगी एवं पुरुषत्व को भी भुलाकर सारा दोष स्त्री पर ढोल देता है । दुरपती के पुत्र को ममता पाल-पोसकर पुत्रवत बड़ा करके शादी कर देती है । शादी के बात गौना आये । एक साल हो गये । लेकिन ब्रजबल अपनी पत्नी से मिल नहीं पाता है। क्योंकि इतने बड़े घर में उसके लिए कोई भी कमरा खाली नहीं है । इसके साथ-साथ वह संकोची स्वभाव का भी है । ममता अपनी कोठरी में किसी को भी जाने नहीं देती। लेकिन ब्रजबल और उसकी पत्नी के लिए अपना कमरा खाली करके ब्रजबल को कमरे के अन्दर सोने को कहती है । पहले तो ब्रजबल अपनी पत्नी को डाँटता है कि थोड़ा सा सब्र कर लिया होता । माताजी को क्यों बाहर सोने को कहा तब उसकी पत्नी स्वयं बताती है कि मैंने माताजी को कमरे के अन्दर सोने को नहीं कहा था । उन्होने स्वयं मुझे कमरे के अन्दर सोने को कहा तब ब्रजबल सोचता है कि आज सूरज पूरब से पश्चिम दिशा की और कैसे उदित हुआ । वह यह नहीं जानता है कि ममता अपना फर्ज पूराकर रही है । और कौन कहता है कि सौतेली माँ सौतेली होती है । इतना ही नहीं नरेन्द्र

जब पढ़ाई-लिखाई करता है । तब उसकी पत्नी बीच में विघ्न उत्पन्न करती है । तब वह पत्नी के रोने की आवाज सुनकर ममता वहाँ भी दौड़ आई। और बहु को समझाने लगी । "तुझमें जरा भी विवेक नहीं । पति से कब, कैसे किस घड़ी मिलना चाहिए। यह औरत को जानना चाहिए । पत्नी को छाती पर पत्थर रखकर बहुत कुछ बर्दास्त करना पड़ता है । और लछिमन की पत्नी उर्मिला चौदह साल बाद लव, कुश को जन्म दिया। केवल सो करके ही पति को खुश नहीं कर सकती। पति के मान-सम्मान, उसकी इच्छा अनिच्छा का भी ख्याल पत्नी को रखना चाहिए ।"[१०] संयुक्त परिवार में सबके रहने भोजन करने की व्यवस्था ममता ही करती थी। एक दिन मनचली ने अदहन में पानी रख दिया। लेकिन घर में अनाज का एक भी दाना तक नहीं, तब ममता अपने ही घर के सामने महगू सेठ की दुकान में गई । वहाँ पर महगू की पत्नी थी । संकोच से ममता के द्वारा उधार में कुछ भी माँगा नहीं जा रहा था क्योंकि पहले के पैसे भी देने को बाकी थे। तब महगू की पत्नी ने ही कहा बोलो अम्मा क्या चाहिए । तब आज भर के लिए चावल माँगती है । महगू की पत्नी को आशीर्वाद देते हुए चली जाती है । ममता बेटी की पक्षधर है इसलिए बेटा-बेटी को लेकर जब जसबीर के साथ उसकी बहस होती है । तब ममता कहती है कि-"तूने बेटों को ही अपना धन कब माना । एक ननिहाल में दो बेटे परदेश। ममता कहती है कि बेटी ही तो सच्चा धन होती है। बेटों को तो सभी पढ़ाते हैं । लेकिन यह क्यों नहीं सोचते कि पढ़ी-लिखी बेटी अपने माता-पिता को भले ही कुछ न दे । किन्तु अपनी सन्तान और राष्ट्र समाज को काफी कुछ दे सकती है ।"[११] ममता महगू सेठ की बेटी गीता और अपने परिवार के लखमन को अरहर के खेत में बाते करते देख शक करती है । क्योंकि दूध का जला मट्ठा भी फूँक-फूँक कर पीता है । यह कहावत यहाँ पर सार्थक होती है । ममता को अब यह पता लगाना था कि लछमन साँझ-सवेरे, रात-बिरात या स्कूल आते-जाते समय किससे मिलता है । तरुणावस्था जब बच्चों में कुछ उग रहा होता है, बडी लचीली, नाजुक एवं भ्रामक होती है। इस अवस्था में इनकी मनोदशा को समझना बड़ा कठिन होता है । इसी बीच सरकार की तरफ से गाँव भर में नशबन्दी अभियान चलाया जाता है । यदि पुरुष की नसबन्दी की गई तो स्त्री पर पुरुष का सहारा लेकर बच्चे पैदा कर सकती है । यह सोचकर सरकार गाँव की भोली-भाली स्त्रीयो को फुसलाकर जबरजस्ती नसबन्दी करवाती हैं तब अनेक सामाजिक संगठन इसका विरोध करते है । इस संगठन का साथ ममता भी देती है । जुलूस निकाले जाते है और सरकार दमन करने के लिए गोलियाँ चलती है । सैकड़ों की तादात में गाँव के लोग मारे जाते हैं । सरकार मरने वाले प्रत्येक व्यक्ति को दस-दस हजार रुपये का मुआवजा देती है । पुलिस इसमें भी भ्रष्टाचार कर गाँव के लोगों को कोरे कागज पर हस्ताक्षर करवाके दो-दो हजार

रुपये देती है। तब वहाँ पर भी रामदूत हनुमान की तरह ममता आकर इसका विरोध करके सबको दस-दस हजार रुपये दिलवाती है। यहाँ तक कि विधवा संस्थान के अध्यक्ष राधेश्याम जसवीर और दुरपती के अनैतिक सम्बन्ध का मामला रफा-दफा करने के लिए एक हजार रुपये की रिश्वत माँगते है यह बात जानकर वहाँ जाकर शेरनी की तरह लड़कर सबको मात देती है। ममता सचमुच हृदय की ममता है। और हारकर राधेश्याम जी विधवा महिला संस्थान में दुरपती का नाम लिखते है। तब जसवीर सोचता है कि ममता रिश्वत देकर आई है। तब ममता समझाती है कि मैं जानती थी तुम यही कहोगे पुरुष शंकाशील होते है। अकलमन्द कम, कम से कम यह तो सोचो इस गरीबी और अभाव में मेरे पास पैसे कहाँ से आये। जो पुरुष अपनी धर्म पत्नी को अंधेरे में रखकर, सगी भयेहु जिसे छूना भी पाप माना जाता है, पर हाथ साफ करता है, वह गैर स्त्री का साथ कब तक देगा। दूसरी तरफ मनचली मुँह की जोर जरुर है। पर काम आँधी तूफान की तरह करती है। घर बाहर कुल अटी रहती है। नारी कब कठोर हो जाती है कब आर्द्र हो उठती है। कुछ कहा नहीं जा सकता। वही मनचली जगती के पुत्र् मुइली को देखकर जलती थी मौका पाते ही उसे मारती थी। एक बार इतना ज्यादा मार दिया कि कुछ दिन तक मुइली लगड़ाकर चलता था। यहाँ तक जब वह दूध-भात खाता, तो मनचली गाय मेरे मैके की है यह कहकर मुइली के आगे से दूध-भात छीनकर अपने बेटे को खिला देती थी। वहीं मनचली अब मुइली पर प्यार उड़ेलने लगी। कहते हैं कि जब वात्सल्य का बाँध फूट पड़ता है उसकी तेज धारा को कोई लाख कोशिश करे, रोक नहीं सकता है। महिला कार्यकारिणी की सदस्याओं से घिरा राधेश्याम सचमुच किशन-कन्हैया सा नटखट लग रहा था। फर्क सिर्फ इतना है कि कन्हैया परमार्थ अर्थात् गरीब बच्चों को पिलाने के लिए गोपियों को छलकर दही माखन छीन लेता था। और राधेश्याम मात्र अपने स्वार्थ के लिए बेसहारा विधवाओं को साधन बनाकर सरकार और समाज के रुपये च्याऊँ कर जाता था। मनचली की बेटी कलासी की शादी होती है तो उसके पिता रिसपाल बम्बई में पुलिस में P.S.I. के पद पर होने के कारण पारिवारिक परम्परा को तोड़कर आवश्यकता से अधिक दहेज देते है। ममता इसका विरोध करती है। क्योंकि वह सोचती है कि ऐसा करने से उनका परिवार बिखर जायेगा। तो मनचली सोचती है कि ममता नहीं चाहती है कि उसकी लड़की का विवाह अच्छे घराने में हो। आखिर में राघू मास्टर के बेटे साधू के साथ कलासी की धूमधाम से शादी की जाती है। लेकिन उनके अत्याचारों, जुल्मों के कारण कलासी अपने प्रेमी गोरखू के साथ भाग जाती है। तब मनचली सोचती है कि ममता ने ही उसकी बेटी को भगवा दिया है। लेकिन जब ममता का पति जसवीर स्वयं कलासी की तलाश में निकलता है और पता लगाता है कि कलासी

इसी शहर में गोरखू के साथ सुख चैने से रह रही है । तब मनचली की शंका दूर हो जाती है । जसवीर यह भी बताता है कि राघू ने उसे देख लेनी की धमकी दी है । और बदला लेने के लिए अदालत में केस करता है । अन्त में अदालत में कलासी और गोरखू को हाजिर होना पड़ता है। लेकिन जसवीर पक्का खेतीहर, खिलाड़ी खेल में थक जाते है और हारते जीतते है, किन्तु कृषक न थकते हैं न हारते हैं । जसबीर सदा कार्यरत रहता है और पैसे इकट्ठे करके कलासी के केस के लिए अच्छा सा वकील कर लेता है । लेकिन राघू उसे अदालत न जाने के लिए घूस देता है । जिससे जसवीर का वकील अदालत नहीं पहुँचता है । उस समय ममता स्वयं वकील की तरह बहस करके जीत हासिल करती है । जब अदालत में बुलाकर वकील साहब पूछते है कि गोरखू तुम कलासी को भगाकर क्यों ले गये । तब गोरखू अदालत में जज के सामने अपना बयान देता है कि मैं कलासी को भगाकर नहीं ले गया था स्वयं कलासी भागकर मेरी शरण में आई थी। अदालत में फिल्मी स्टाइल में बहस होती है । तब ममता कलासी के द्वारा जो पत्र अपने पड़ोसी तुलसीराम के हाथों लिखाकर अपने पिताजी को भेजा था वही चिट्ठी अदालत के सामने पेश करती है । अदालत में स्वयं राघू का वकील उस पत्र को पढ़ता है । मेरा पति काम काजी है, घुमक्कड़ भी है । रोज बारह बजे रात को वे न जाने कहाँ से घूमकर लौटते है । मैं सबकी सेवा करती हूँ । लेकिन उसका अर्थ सास, ससुर और जेठ कुछ और समझते हैं । अपने ससुर और जेठ की बदनीयत से बचकर रहती हूँ । पति से जब कहा तो वे बोले यहाँ के लोग बड़े दुष्ट है । उनकी नीयत खराब है । ये लोग मेरी खुशी देख नहीं सकते । सासु जी बीड़ी पियक्कड़ वे भी उन्हीं लोगों का साथ देती है। एक महीने में, शरमा दे ऐसी-ऐसी घटनाएँ इन लोगों ने मेरे साथ की है । अदालत में स्वयं राघू का वकील इस पत्र को पढ़ता है । और उसके काले-कारनामें जग जाहिर हो जाते हैं । कलासी पढ़ी लिखी नहीं है । इसलिए यह पत्र फर्जी है ऐसा वकील आरोप लगाता है । और जब दूसरे दिन जब अदालत की कार्यवाही शुरु होती है । तो राघू का वकील फर्जी चिट्ठी लेखक को अदालत में पेश करके यह चिट्ठी फर्जी है, ऐसा सिद्ध करने की कोशिश करता है । लेकिन 'साँच को आँच कहाँ' राघू की रिश्वत को ठोकर मारकर और उनके गुंड़ो का सामना करते हुए खून से लथपथ तुलसीराम गवाही देने के लिए अदालत में आ पहुँचा। उसने अदालत में जज के सामने अपनी गवाही दी कि कलासी भाभी का पत्र उसने ही लिखा था । राघू और उसके परिवार के सदस्य कलासी भाभी को सताते थे । राघू ने स्वयं मुझे गवाही न देने के लिए एक हजार रुपये का लालच दिया था । लेकिन जब मैं सच बोलने के लिए अड़ा रहा । तब उसने अपने गुंड़ो से मेरे ऊपर जानलेवा हमला किया। और उसके गुंड़े मुझे मरा हुआ समझकर चले गये ।

तब जाकर मैं यहाँ गवाही देने पहुँचा। तुलसीराम की गवाही सुनने के बाद जज साहब ने अपना फैसला सुनाया कि कलासी के ससुर राघू तथा जेठ उसे तरह-तरह से सताते थे । कलासी का पति भी उसकी रक्षा करने में असमर्थ रहा है । इसलिए कलासी ने अपने बाल-विवाह को अमान्य करके गोरखू के साथ कानूनी तौर पर पुनर्लग्न किया। कलासी का यह नया कदम नारी चेतना का द्योतक है । कलासी प्रशंसा की पात्रा है। कलासी को तंग, परेशान एवं बेइज्जत करने के जुर्म में राधे को दो महीने की जेल की सजा तथा दो हजार रुपये जुर्माना वसूल करने का अदालत हुकम देती है । कलासी का नसेड़ी पति निर्दोष है । किन्तु जेठ नि:संग ने कलासी की इज्जत लूटने की कोशिश की थी । इसलिए नि:संग को भी दो महीने की जेल की सजा भुगतने के लिए अदालत हुकम देती है । कलासी की पहली सास जो अब कलासी की कुछ नहीं है, को यह चेतावनी दी जाती है कि वह आइन्दा फिर कभी दूसरे की बेटी पर जुल्मों सितम न गुजारे।

(४) ग्रामपंचायत का यथार्थ दस्तावेज 'अँधेरा जहाँ उजाला' :

'अँधेरा जहाँ उजाला' नाम से ही स्पष्ट है कि जहाँ कहीं भी अधेरा हो वहाँ उजाला भी होता है । वैसे तो वर्तमान समय में हर जगह अँधेरा व्याप्त है और हर जगह उजाला की एक न एक किरण भी अवश्य है । लेकिन डॉ. सूर्यदीन यादव के आँचलिक उपन्यास "अँधेरा जहाँ-उजाला" में जैसे अँधेरे अंचल और उस अंचल में उजाला की एक किरण को खोजने का प्रयास किया गया है । 'अँधेरा जहाँ उजाला' में अँधेरा ही अँधेरा दिखाई पड़ता है । और उजाले की एक किरण उस अंधेरे में लुका-छिपी का खेल खेलती सी दिखलाई पड़ती है । अंधेरा है अशिक्षा का, अज्ञानता का अत्याचार-शोषण का, जाति-पाँति और ढोंग-पाखण्ड का लोगों के मन में ईर्ष्या-द्वेष का । उजाले की एक किरण जो बीच-बीच में दिखाई पड़ती है, वह है साधव के द्वारा, रामजीत के द्वारा, धनपती, सुन्दरी के द्वारा और कभी-कभी दिवाकर के द्वारा । अँधेरे के प्रतीक स्वरूप कई पात्र हैं-शोला, कंजहा धर्मसिंह, भूखल पाण्ड़े, दलपत, जगेसर चौधरी आदि । कहानी की शुरुआत लेखक अपने पैतृक गाँव ढ़ाहा से करते हैं । जहाँ पर कंजहा जैसा व्यक्ति गाँव के ही शुकरु जैसे विभीषण का सह पाकर साधव के घर के दरवाजे पर लगा ताला तोड़ दिया और अगल-बगल, ताक-झांक कर घर में घुस गया । थोड़ी देर में जो भी हाथ लगा सब पोटली में बाँधकर कंजाहा घर के बाहर निकलकर चम्पत हो गया । साधव भी समझ गये कि शुकरु ने ही किसी से मिलकर ताला तोड़वाकर मेरे घर में चोरी करवायी है। तो दूसरी और लेखक ने गाँव के परम्परागत खेलो का भी वर्णन किया है । हरिपुर और नेमापुर वालों के बीच हुए सुर बोलने के खेल में नेमापुर वालों ने शून्य के मुकाबले

एक अंक से सुई का खेल जीत लिया । दिवाकर पढ़ाई-लिखाई करने के लिए अहमदाबाद गये हैं । उनके पिता दिवाकर परदेश से घर कब आयेगा । इसके लिए बेताब रहते हैं।

वे जैसे स्वाति के बूँद की आशा में सदा बादल की और देखते रहते है । उसी समय गाँव में भेड़ी की चोरी हो जाती है । और निर्दोष आमघन की चोरी में कैद हो जाने पर साधव बहुत चिंतित हुए और सोचते है कि जहाँ अँधेरा ही अँधेरा हो वहाँ सच स्वयं ही अदृश्य हो जाता है । ऐसे अंधेरे में न्याय की तो कोई बात ही नहीं करता है । तभी दिवाकर के पिताजी गाँव के लोगो का वर्णन करते हुए । उनके परम मित्र रामजीत का वर्णन करते है । कि रामजीत के ऊपर संकट के बदल आ गये है । दिवाकर ने कहा- "पर वह बड़ा ही करमईत एवं कर्मठ है । वह कोई घासफूस का तिनका नहीं, जो आँधी-तूफानी वंड़ली चक्रावात उसे उड़ा जाये । रामजीत साहसी, हिम्मती, तेजस्वी नवयुवक है । वह जीवन में आती हर परिस्थिति का सामना करना जानता है । आदमी ही नहीं, वह न्याय के लिए भगवान से लड़ जाने की क्षमता रखता है ।"[१२] गाँव के लड़ाई झगड़े को देखकर रामजीत भी दिवाकर की तरह शहर जाने की बात करता है । तब दिवाकर रामजीत को गाँव न छोड़ने की सलाह देता है । और शहर के बारे में बताता है कि वहाँ किसी को किसी से मिलने की फुर्सत ही कहाँ होती है । शहर में लोग अपनी कहानी मन में दबाये हुए मिलों, कारखानों और अन्य नौकरी-पेशों से जुड़े रहते है, जैसे चुम्बक से लोहा जुड़ा हो । एक मिल में अनेक, जाति,धर्म, देश, विविध भाषा आदमी नहीं, एक चुम्बक से कई लोहे के टुकड़े जुड़े होते है । दिवाकर रामजीत से कहता है कि जो लोग श्रमजीविकों के कार्य को गधा-मजूरी कहते है । उनमें और धोबी के गधे में बहुत कम अन्तर होता है । मात्र उतना ही अन्तर जितना बैल और गधे में । बैल भार को कन्धे पर ढ़ोता-खीचता है और गधा पीठ पर लाद कर ले जाता है । लेखक ने गाँव के अनपढ़ लोगो की मानसिकता का भी वर्णन किया है । आंचलिक यथार्थ में शिवराजी विधवा है और हर विधवा और विधुर पर समाज के लोग चाँपती नजर रखते है । वह अपनी ससुर की पिता के समान सेवा चाकरी करती है तो विरादरी के लोगों ने उसे धमकी दी थी । कि बंधन अपनी विधवा पतोहु के साथ चोरी-चुपे साँठ-गाँठ रचता है । तो दूसरी और ठाकुर धर्मसिंह का सह-पाकर धनीराम रामजीत से झगड़ा करने आता है । तब रामजीत की पत्नी सुन्दरी डटकर मुकाबला करती है । और कहती है कि तुम्हारे भाई कौड़ीराम के घर रात को सेंध फोड़ते हुए रंगे-हाथो पकड़ा गया था । धर्मसिंह का बेटा... फिर भी तुम उसी बाबू की उसमें घुसे रहते हो । इन गरीबों पर रोब झाड़ते हो । ये अपने अधिकार लेना जानते हैं । अब ये लोग कठपुतली नहीं कि

तुम इन्हें अपने इशारों पर नचाते रहो । क्योंकि ठाकुर को शक है कि गाँव वालो ने रामजीत का सह-पाकर उनकी पार्टी के सदस्यों को अपना वोट नहीं दिया । इसलिए उसकी पार्टी के सदस्य हार गये । वह आकर सुन्दरी को धमकाता है कि तुम लोगो के पास खेत नहीं है । हमारे जमीन में काम करके मजूरी लेकर अपना पेट भरते हो । अब हम तुम लोगों को अपने खेतों में काम नहीं करने देगे । भूखो मरोगे तब पता चलेगा । सुन्दरी कहती है कि ज़ाओ जोतो-बोओ अपनी जमीन अब लोग लात नहीं धरेगे तुम्हारे खेतों मे । जुल्म, अत्याचार, भ्रष्टाचार हर सरकार के प्रशासन काल में होते हैं । अरे भाई, राम और कृष्ण के काल में अन्याय अधर्म होते थे । हर युग साक्षी है कि न्याय और धर्म की रक्षा के लिए सदा ही युद्ध हुए हैं । आज समग्र देश में जाति पतन और सम्प्रदायिकता का चेपी रोग तेजी से बढ़ता जा रहा है । आत्माराम का बेटा चन्दर सितवा को चारे डालकर पटिया-फु सला रहा था । तब तो उसकी माँ को भी अच्छा लगता था कि सितवा खेत में नहीं गयी तो भी उस दिन की मजूरी चन्दर दे जाता था । बेटी पैसे कहाँ से लाती है । माँ-बाप को जानना चाहिए । पर लोभी माँ-बाप पैसा चीन्हते हैं । वे कानों में तेल डाले आँखो पर पट्टी बाँधे अनजान बने रहते हैं । ऐसे में बेटी का क्या दोष। गाँव के अनपढ़ और वृद्ध लोगों को जो अज्ञान थे अंधेरे मे ही रामजीत पढ़ाने का काम करता है । ठाकुर धर्मसिंह इसका विरोध करते हैं । वे कहते है कि ये नीच जात के लोग पढ़-लिख लेंगे तो हमारे खेतों में काम कौन करेगा । इसलिए इसी मौके की तलाश में रहते हैं कि कैसे करके भी रामजीत का विद्यालय बन्द करवा दिया जाय । और अपनी बिट्टन को छेड़छाड़ का झूठा आरोप लगवाकर धर्मसिंह रामजीत को मारने-पीटने लगते है । दिवाकर हाथ मलकर रह गये कि उनके आने के पहले ही रामजीत पिट गया। जहाँ झूठ की आँधी बहे, वहाँ बड़े जहाजी पेड़ समूल-उखड़कर धराशायी हो जाते हैं । झूठी हवा में सच कौन सुनता है । रामजीत ने दिवाकर से बताया कि धर्मसिंह के भतीजे ठाकुर सिंह की बड़ी लड़की राजकली सयानी है । वह कई लड़को को बदनाम कर चुकी है। पच्चास साल की है । शादी नहीं हुई । उसी ने मुझे बदनाम किया है । दिवाकर रामजीत को समझाता है कि जनता बहते पानी की तरह होती है । जिधर ढ़ाल मिला उधर बह जाती है । दुःख तो इस बात का है कि कई पढ़े-लिखे सज्जन लोग भी खड़े तमाशा देख रहे थे । किसी को ये नही सूझा कि बिट्टन या तुमसे पूछता कि बात कितने आना सच है ? बस छत्ते पर पत्थर लगते ही मधुमक्खी की तरह उजह पड़े । वैसे आठ साल की बच्ची बिट्टन पर इस तरह का वाकिया-दरोगा भी फरेब समझेगा । पर पैसा पाकर अच्छे तटस्थ ध्रुव तारे भी डिग जाते है । एक और घटना में अंजोरे बाबा की पत्नी सोनपती देखने में बहुत ही खूब-सूरत थी । लेकिन अंजोरे बाबा घुमक्कडी धर्म का निभाते थे।

जिससे वे पत्नी सोनपती को शारीरिक मनोकामना पूर्ण नहीं कर पाते थे । यहीं कारण है कि सोनपती और परपुरुष रामनाथ के बीच नजदीकियाँ बढ़ती गई । ये नजदीकियाँ इतनी ज्यादा बढ़ी कि एकदिन सोनपती अपने पति अंजोरे का घर छोड़कर रामनाथ के घर चली गई । और पति-पत्नी की तरह रहने लगे । जब इस बात की जानकारी अंजोरे बाबा को मिली तो अंजोरे बाबा आवेश में आकर अपना लिंग काटकर शिवजी की मूर्ति पर चढ़ा दिया । और उसी दिन से निर्वस्त्र होकर बाबा की तरह घूमने लगे । और शिव भगवान की पूजा-पाठ करने लगे । गाँधी जी और अंजोरे मे अन्तर सिर्फ इतना था कि गाँधी जी राष्ट्र के लिए निःशस्त्र लड़ते-लड़ते शहीद हुए थे । और अंजोरे सशस्त्र अपने-आपको लड़ते लड़ते को शिव मान बैठे । इसी सोनपती और रामनाथ ने मिलकर एक बालक को जन्म दिया । जिसका नाम था रामजीत । इसी कारण बाल्यकाल से ही रामजीत का जीवन संघर्षो से भरा रहा । क्योंकि सभी उसे कुजाति का । कहकर उसका अपमान करते । स्कूल में पंड़ित रामदत्त शुक्ल रामजीत को बहुत पीटते थे । कहते थे कुजाति का बच्चा, हरामी का पिल्ला, सारी ब्राह्मण जाति का नाक कटवा डाला ससुरे ने। विद्यालय में जब भी किसी भी प्रकार की चोरी होती तो उसका इल्जाम रामजीत पर लगाकर उसे मास्टर बहुत पीटते थे । मार खाते-खाते रामजीत और मनबढ़ हो गया । जिस प्रकार से नगारे पर जितनी जोर से सोटा लगाया जाता है । नगाड़ा उतना ही तेज गति से बजता है । उसी प्रकार से मार खाकर रामजीत मजबूत होते गया । कई लोगों ने तो यहाँ तक कह दिया था कि रामजीत रामनाथ का बेटा ही नहीं है । वह तो अंजारे साधू का बेटा है । आज वही रामजीत प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम गाँवों में चलाकर अनपढ़ों को शिक्षित कर रहा है । तो दूसरी और ठाकुर धर्मसिंह विद्यालय बन्द करवाने के लिए एडी चोटी का जोर लगाता है । वे थान्हे-कोटवाली कुल अटा रहता है । ऐसे जैसे भक्त लोग मन्दिरो में दर्शन करके कुछ पूजा-प्रसाद चढ़ा आते है । धर्मसिंह बड़े-बड़े साहबों का भक्त है। बिट्टन को छेड़छाड़ करने का आरोप लगवाकर धर्मसिंह रामजीत को पिटवाकर उसका विद्यालय गिरवा देता है । तथा थाने में रामजीत के नाम पर रिपोर्ट दर्ज कराता है । कुछ ही दिन बाद थानेदार आकर रामजीत को गिरफ्तार करके ले जाते हैं । और बाद में जमानत पर छूट जाता है । और हिम्मत नहीं हारता है । तेजासिंह के साथ मिलकर गाँव के अनपढ़ लोगो को खेल-खिलाता है । तब भी धर्मसिंह यह कार्य करने के लिए उसे धमकी देता है । तब वह कहता है कि वह उसकी धमकियों से डरनेवाला नहीं है । तभी जब वह खेल-खिलाता है तभी ठाकुर के आदमी उसके मित्र नागेश्वर को मारते है । लेकिन साधव ने धर्मसिंह को कुछ कान में कहते हुए देखा । इसलिए उन्हें शक है कि मारने वाला धर्मसिंह का ही कोई आदमी होगा । धर्मसिंह जैसे लोगों के कारण ही गाँव में आपसी

फूटन हो गई है । होली, दीवाली, जन्माष्टमी, दशहरा जैसे कुछ ही पर्व मनाये जाते है। संस्कृति के रक्षक उत्सवों पर्वो के प्रति मनुष्य का श्रद्धा-भाव कम होता जा रहा है । तभी रामजीत के नाम पर चिट्ठी आती है लिफाफा खोलकर चिट्ठी पढ़ने लगा ।

"आप प्रौढ़ शिक्षा के वर्ग चलाने से अनपढ़ो को शिक्षा-मिल रही है । इसलिए आपके आवेदन को स्वीकार किया जाता है आपको स्थायी प्रौढ़ शिक्षक पद पर नियुक्त किया जाता है ।"[१३] प्रौढ़ शिक्षणाधिकारी, सुल्तानपुर, उत्तरप्रदेश । रामजीत की महेनत रंग लायी । इसके बाद रामजीत करतारी पंड़ित के लड़के के साथ अपनी बेटी की शादी तय करते है रामजीत के मित्र दिवाकर कुछ आर्थिक मदद करते हैं । रामजीत शादी-ब्याह सादगी से करना चाहते है । वो तो ब्राह्मण को भी शादी-ब्याह में शादी कराने के लिए नहीं बुलाना चाहते हैं क्योंकि वे मानते है कि वे लोग मांसाहारी हो गये है तभी गाँव के लोग समझाते है कि कच्छ-मच्छ खानेवाला पंड़ित या विद्वान रावण की तरह राक्षसी वृत्ति वाला हो सकता है । राम ने भी रावण से पूजा-पाठ करवाया था । वही परदेसिन जो कंजाहा को लेकर पूरे गाँव में बदनाम थी । रामजीत के प्रौढ़ शिक्षा में पढ़ने के कारण उनका भी जीवन परिवर्तित हो गया और आज रामजीत के बेटी की शादी में बड़े तन-मन से जुटी है । जिसे लोग बदचलन समझते थे । वहीं आज इस वैवाहिक कार्यक्रम की अगुवाई कर रही है । परदेसिन अपनी कुछ भूलों के कारण बदनाम रही है । लेकिन प्रौढ़ केन्द्र में जाने से वह लोगो के लिए प्रियजन बन गयी है । अभी पंड़ित शादी-ब्याह के श्लोक संस्कृत में पढ़ ही रहे थे कि किसी ने करतारी पंड़ित के कान में धीरे से कुछ फुस फुसाया । करतारी शुक्ल गोड़ पटकते हुए । अपने पुत्र भूलन के पास गये। और कहने लगे । यह शादी नहीं होगी । हमारे साथ धोखा हुआ है । लड़की की माँ तेलिन है बाप भी परजाती है । इसलिए यह विवाह नहीं हो सकता । रामजीत करतारी के पैर पकड़कर माफी माँगकर शादी करने को कहते हैं । तब भी करतारी टस से मस नहीं होता है । तब दिवाकर और करतारी के बीच वाक् युद्ध छिड़ जाता है । अन्त में सभी बराती चले जाते है । लेकिन दिवाकर की युक्ति से दिवाकर के काका मूरत के साथ जो अहमदाबाद में नौकरी करता है । उसके साथ शादी करवाकर रामजीत की इज्जत रख लेते है ।

(५) मनःस्थितियों की जीवन्त 'चौराहे के लोग' :

'चौराहे के लोग' मनोवैज्ञानिक उपन्यास है । शिवनगर स्टेशन पर रेल से उतरकर भावेश रिक्शे द्वारा अपने गाँव राजापुर पहुँचता है । राजापुर मौजा में हजारों हिन्दुओ के

घरों के बीच में दो-चार घर मुस्लिमों के हैं । जो हिन्दुओं की ही तरह वर्तन व्यवहार करते हैं । गाँव के दरवेश चाचा धागा-पाटा लिये चले जा रहे हैं । साथ कई लोग जा रहे हैं । जो पहचानने में कम आ रहे हैं । मैं इसी गाँव का एक हिस्सा हूँ । यहाँ के चौराहे से सदा गुजरता रहा हूँ । मैं प्राथमिक शाला ड़ोमनपुर में जो गाँव के पूर्व में पड़ता है, कंधे पर बस्ता लटकाये पढ़ने जाता था। वहाँ से पाँचवी कक्षा पास करके पूर्व दिशा में कच्ची पगडंडी और भद्दी भरी सड़क से होते हुए मैं बेला पश्चिम जूनियर स्कूल में पढ़ने जाने लगा। मेरा नाम ड़ोमनपुर प्रायमरी स्कूल में जब लिखवा दिया तब से स्थायी रूप से चौराहा गाँव मे रहने लगा था । चाचा जी सादरा गाँव में रहते थे । और रोडवेज में सर्विस करते थे । सादरा में एक वर्ष रहने के बाद बी.एड. में प्रवेश मिला और मैं अहमदाबाद में दादा जी के साथ सोसायटी की चाली में रहने लगा । वहीं से गुजरात युनि. की परीक्षाएँ बी.एड. और एम.ए. पास की। वहीं से पी.एच.डी. कर रहा था । तभी खेड़ा जिले के अलिन्द्रा गाँव में स्थायी रूप से अध्यापक के पद पर नियुक्त हुआ। चौराहा गाँव एक छोटा-सा पुरवा जो राजापुर मौजा में लगता है । एक समय था जब बिना बुलाये लोग एक दूसरे की मदद करते थे। अब ढूँढ़ने पर बड़ी मुश्किल से मजदूर मिलते है । भावेश पन्द्रह दिन बाद बलसाड़ से अलिन्द्रा लौटा था । उसकी पत्नी हरिता महीने पहले गाँव से चली आई थी । विवेकानन्द कॉलेज अहमदाबाद में बी.एड. करता था तो एक दिन सिटी हाईस्कूल में टीचिंग ओबजर्व करते समय इसी तरह मंदा नामक सहपाठिनी बगल में सटकर बैठ गई थी, लेकिन इस लड़की की सटन बड़ी विचित्र लगी। एक बार तो मन में आया कि डाँट दूँ- "हे मैडम जरा ठीक से बैठिए । यहाँ कोई सोफासेट नहीं, जो तुम ओड़गती चली आ रही हो ।"[१४] केले की खेती के लिए आनन्द तहसील और वड़ोदरा जिला सन्नाम है । केले के बड़े-बड़े बाग़वान दूर तक दिखाई पड़ते हैं । रिलीफ रोड पर चलते-चलते थक गया। रास्ता भूल गया तो रिक्शा किया । घी-काटा के खाँचा में प्रभात सिनेमा के पास नव प्रभात प्रेस में पहुँचना था । रिक्शे वाला पता नहीं कहाँ-कहाँ घुमाकर रिक्शा खड़ा करते हुए बोला-पाँच रुपये हुए । रुपये देकर मैं आगे बढ़ने लगा, एक आदमी से पूछा कि भई नव प्रभात प्रेस कहाँ है । वह बोला- "कृष्ण सिनेमा के सामने ही तो है ।"[१५] मै आश्चर्य में पड़ गया, वहीं से मुझे रिक्शे पर बैठाया और वहीं लाकर उतार दिया । यह हादसा लेखक को जब वलसाड़ कोपी चेक करने गये तब रिक्शेवाला बोला साहब कहाँ जाना है तब याद आया रोजी-रोटी की तलाश में गाँव के नवयुवक शहर में आ गये हैं । गाँव की शक्ति शहर की शक्ति बनती जा रही है । गाँव के काफी लोग मीलों-कारखानों में काम करते है। खेतों से कटकर खलिहानों से जुड़ते फसली डाँठ की तरह लोग गाँव गये हैं । बाबू अपने पेट खातिर हम ही वनवास

नाई सेवत हई । रामचन्द्र का वनवास भवा जरुर रहा । मूल उनकी लड़ाई लोगन के हित खातिर भई । थोड़ी-सी मजदूरी पाने की आशा में अपने अमूल्य जीवन को समर्पित करने की आशा और हिम्मत लिये खड़े चेहरे थकते-ऊबते-डरते नहीं है । सुल्तानपुर का शाहगंज चौराहा। अहमदाबाद का खाड़िया चार रास्ता । नड़ियाद मे सन्तराम टावर का चौराहा और यह वलसाड़ का चौराहा । ठेकेदार माली बनकर आयेगा और इन फूल से चेहरों को चौराहे रुपी बगीचे से चुन ले जाएगा । बोर्ड के आदेश से मुझे इस संस्था में बारहवीं की उत्तर-पुस्तिकाएँ जाँचने के लिए बारह बजे उपस्थित होना है । उसके बाद ही वापसी का निर्णय लूँगा। मेरी बाँई तरफ दाहोद से आये ठाकुर बी.बी.सिंह और दायी तरफ नड़ियाद के बी.के.सोलंकी ने अपना बिस्तर बिछाया । गोधरा के सुरेश नाई स्वयं को बड़े शान से शर्मा कहते । जनेऊ पहनते थे लोग उन्हें ब्राह्मण समझते थे । अरे विभीषण की मडैया में जो सुख-सुविधा भी । वह रावण की सोने की लंका में नहीं थी । खासकर तो यह किलहन कथाकार तुम्हारे माँ-बाप को खिलाती है । जब शादी करके वह चली जायेगी तो माँ-बाप की सेवा करना खिलाना-पिलाना न पड़े । इसलिए तुम लोग बहन की शादी नहीं होने देते हो राजनीतिक लोग रुपये सड़क पर खर्च करने के पहले चुनाव लड़ने में खर्च कर डालते थे । सुग्गी में शाम को मोची शराब बेचकर कुछ रुपये दान लेता था। पयागीपुर चौराहे पर गुंड़ों ने उसका रिक्शा रोक दिया । बेचारी को पकड़ ले गये । बर्बाद करके उसे बेच दिया था । एक लड़की को बर्बाद करने में औरत का सबसे बड़ा हाथ होता है। लेकिन पता नहीं कैसे शिक्षिका को सिनाखत मिल गया था कि गुंड़ों की जीप के पीछे पुलिस की जीप लगी है । शायद पुलिस का कोई कर्मचारी क्षुद्र पैसो के लोभ में बिक गया था । महाभारत के संजय की तरह हमें दूरदर्शी होना चाहिए । वहाँ तो मात्र धृतराष्ट्र अन्धा था । पुलिस-दरोगा अपने बाप के नहीं होते । फिर दामाद की इज्जत करना क्या जाने ? झालापुर गाँव के बगल में कंकाली डेरा डाले है । सुल्तानपुर से लौटने पर गुलाब बी.डी.ओ. नहीं मिलने की बात सबसे बताने लगे थे । तब माँ के सामने बैठी गुलाब की पत्नी जोर-जोर से खुशी से हँसने लगी थी । खर्च हुआ उसकी चिन्ता नहीं पर हर बात में झूठ बोलना और अंधेरे में रखकर मेरे साथ चालबाजी करना, अच्छा नहीं लगा।

(६) 'प्रेमश्रोत' उपन्यास की अन्तर्कथा :

गोमती नदी के किनारे सोतहवा के बाबा के मन्दिर से निकलकर नदी के प्रवाह में विलीन हो जाने वाला वह नाला जहाँ से जल श्रोत वहाँ मानों गाँव परिवेश का प्रेमश्रोत स्वयं ही कहता हुआ शहरों तक पहुँचता है । कुड़वार गाँव में एक बालिका जूनियर स्कूल था, पर सुदूर गाँव की लड़कियाँ वहाँ तक नहीं पहुँच पाती थी । कुड़वार हाईस्कूल से

दसवी की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद मुझे भैया के आदेश और मौसिया की सिफारिस से महात्मा गाँधी इन्टर कॉलेज के ग्याहरवी कक्षा में प्रवेश मिल गया था । पन्द्रह मील रोज साइकिल से आना-जाना पड़ता था । थककर चूर हो जाता । खेतों में बैलो के साथ खटना। मैं उस खटन से मुक्त होने के लिए सालान्त परीक्षा छोड़कर छुट्टियों में कानपुर भाग आया । अपने काका श्वसुर के साथ कानपुर में एक महीना रहा । उन्होंने बताया कि कुड़वार से आठवीं कक्षा उत्तीर्ण करके सोतहवा वाली लड़की अपने पिता के साथ कानपुर में नवी कक्षा में पढ़ती है । श्वसुर जी ने एक पाउडर की दुकान पर मासिक पचहत्तर रुपये में नौकरी पर रखवा दिया । चौदह साल की उम्र ही ऐसी होती है कि जब उसमें कुछ उग रहा होता है तब उसे प्रेमांकुर की संज्ञा दे दी जाती है । दुकान कुछ ज्यादा चलती नहीं है । लेकिन अगल-बगल के दोनों दुकानदार अपने आपको धन्नाशेठ समझते हैं । उनके लड़के आँगन में जब औरतें स्नान करती हैं । तब ताक-झाँक करते हैं । श्यामू चौकता है कि गाँव में भी औरत घर की ओसरी में ही स्नान करती हैं । लेकिन वहाँ कोई ताक-झाँक नहीं करता है । ये संस्कार इनके माता-पिता से ही इन्हें मिले होगे । और गाँव में पति-पत्नी कब एक-दूसरे से मिलते हैं, सूर्य चन्द्र को नहीं पता चलता है । सेठ जुआ खेलता है । महाभारत काल से बल्कि उसके पहले से यह प्रथा मनुष्य के जीवन में घर कर चुकी है । जुआ के खेल में पांड़वो ने द्रौपदी को भी दाँव पर लगा दिया था । वे जमीन जायदाद से भी हाथ धो बैठे थे । जुए का खेल जीवन को बर्बाद कर देता है । ऐसा जानते हुए भी मनुष्य जुआ क्यों खेलता है । रामायण और महाभारत की कथा सुनने पढ़ने के बावजूद मनुष्य लकीर का फकीर क्यों बना रहता है । सेठ श्यामू को सफेद पाउडर में मटमैला पाउडर मिलाकर बेचने के लिए कहता है। तब श्यामू सोचता है कि माता-पिता और गुरुजनो द्वारा सिखाई गई ईमानदारी यहाँ मिट्टी में मिला दी गई। गलत आदमी के साथ गलत काम करना पड़ता है । शीला श्यामू से कहती है कि दरअसल जिसे तुम गवई डर कहते हो । वह नारी का संयम और विवेक है । विद्यालय में अंग्रेजी के अध्यापक शीला और श्यामू को बातचीत करते देख एक प्रश्न पूछते है। जिसके उत्तर न देने के कारण उसके बाद के पीरियड को छोड़कर एक बगीचे में बैठकर प्रेमपूर्वक बाते करते हैं । इतना ही नहीं । जब अपनी सखी शांती और प्रभावती के साथ बाजार में खरीदी करने जाती हैं । तभी शीला का छोटा भाई महेन्द्र शरारतवश वहाँ पीछे से आकर आँखे बन्द कर देता है । तब शीला कहती है कि श्यामू मेरी आँखे खोलो तभी शीला और प्रभावती खिल खिलाकर हँसने लगती है । धीरे-धीरे श्यामू और शीला के बीच नजदीकी बढ़ती जाती है । अक्सर विद्यालय में मौका पाते ही जैसे दो कबूतर एक-दूसरे की चोंच में चोंच भरकर मस्ती में क्रीड़ा करते हैं । उसी

तरह यह युगल विचरण करने लगा । अचानक श्यामू के गाँव से तार आया कि उसकी माता बीमार हैं । तार पढ़कर दूसरे दिन लगभग सुबह सात बजे श्यामू अपने घर पहुँचा उसने देखा घर में सन्नाटा छाया हुआ है । उससे पिता का स्वर्गवास हो चुका था । गाँव पहुँचकर माता-बहन की जिम्मेदारियों को निभाते हुए कुछ ही दिनों में श्यामू शीला को भूल जाता है । कि इतने में ही डाकिया श्यामू का पत्र लेकर आया । जिसमें शीला ने लिखा था कि

"उस दिन का मजाक की जगह प्यार करना भूल गये क्या ? क्या तुम किसी डूबते हुए को उबारना नहीं चाहोंगे ?"[१६] कह गये थे कि जल्दी लौटूँगा । साल बीत गये चिट्ठी भी नहीं दिये । और कितना इन्तजार कराओगे । मैं फाँसी पर लटकाई जाने वाली हूँ । बस इतने में ही सारी बात समझ जाओ मेरा आखिरी पत्र है । पत्र पाते ही नहीं आये तो फिर बहुत देर हो चुकी होगी । पत्र पढ़ते ही श्यामू अपनी माँ से परीक्षा देने का बहाना बताकर माता की अनुमति लेकर कानपुर के लिए रवाना हो गया। तथा उसके घर से आधी मील की दूरी पर बतासा मार्केट में वह शीला के घर जा पहुँचा । शीला का घर खूब सजाया गया है । तथा आज ही शाम को बारात आनेवाली है। वहीं हाथ मलते हुए एक बेंच पर बैठ गया । तभी अचानक शीला की नजर श्यामू पर पड़ी । उसने अपनी सखी प्रभावती के कान में कह दिया कि वह बाहर बैठे श्यामू से कहे कि घर के पीछे बगीचे में उससे मिले । शीला ने समझाया कि वह सारी बातें उसके पिता से कहे । शीला की इच्छानुसर श्यामू शीला के पिता के साथ सारी बातें करते हुए अपने प्रेम का इजहार करता है । लेकिन लाख कोशिश करने के बावजूद भी उसके पिता जी नहीं माने और पल, घड़ी, पहर, रात-दिन, हसे, माह और साल बीत गये । शीला अपने पति प्रकाश के साथ विदा होकर चली गई । श्यामू ने भी कुछ दिनों बाद कॉलेज में ही मीना नाम की लड़की के साथ प्रेम विवाह कर लिया । शीला अपने पति प्रकाश के साथ आकर अहमदाबाद के नांगरवेल विस्तार में रहने लगी । हालांकि वे लोग भी तो सुल्तानपुर जिले के कुड़वार गाँव के हैं । लेकिन नौकरी पेशा के कारण अब शहर में रहने लगे हैं । यहाँ आकर शीला अपने देवर महेश के साथ घुलमिल गई है । उसके साथ कई बार अहमदाबाद शहर घूमने गई पिक्चर देखने भी जाती है । एक दिन शीला अकेले ही पिक्चर देखने सिनेमा हाल में गई । वहाँ संजोग से श्यामू भी पिक्चर देखने आता है । और काफी लम्बे समय के बाद एक दूसरे के साथ मिलकर काफी प्रसन्न हुए । घर ले जाकर शीला श्यामू को बताता है कि तुम्हारी शादी के बाद मैं गाँव लौट गया था । मेरी शादी नहीं हुई थी । उसके पहले भयंकर बीमारी से माँ का स्वर्गवास

हो गया था । उसके पहले ही पिता जी का देहांत हो चुका था । कानपुर में पढ़ाई पूरी करने के बाद मैंने रानी के साथ लव मैरेज कर लिया । बी.टी.सी. की ट्रेनिग करके केन्द्रीय विद्यालय में जूनियर विभाग में शिक्षक की नौकरी करता हूँ । चार महीनें हुए। कानपुर से मेरी अहमदाबाद बदली हुई । माँ के मरने के बाद छोटी बहन कान्ती मेरे साथ रहती थी लेकिन विद्यालय आते समय रेलवे फाटक क्रोस करते हुए ट्रेन की चपेट में आ गई । तभी शीला श्यामू को बताती है कि यह घटना तो कुछ ही दिनो पहले की ही है । क्योंकि मेरा देवर महेश भी विद्यालय में पढ़ने जाता है । और उसने बताया कि उसकी नजरो के सामने ही एक लड़की ट्रेन की चपेट में आ गई । ऐसा कहते-कहते दोनो की आखें भर आयी । शीला की अचानक मुलाकात से रानी पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा । पर श्यामू इसी उघेड़बुन में पड़ा रहा कि यह कैसा कुदरत का खेल है। जिसे वह मन से निकाल चुका था । वही आज मिल जाने से मन बेचैन हो उठा । अहमदाबाद आये हुए साल हो गये थे । वह जानता था कि शीला इसी शहर में रहती है । फिर भी उसने उसकी खोज नही की । केन्द्रीय विद्यालय में मन के मुताबिक बदली नहीं होती है । नहीं तो ट्रान्सफर करवा के दूसरे शहर चला जाता । एक दिन श्यामू देखता है कि एक कार आकर उसके दरवाजे खड़ी हुई और सज्जन जो कानपुर से आ रहे है। श्यामू से सुरेलिया जाने का रास्ता पूछते है । बातो ही बातों से पता चलता है कि ये तो शीला के पिताजी है । तब श्यामू उनका चरण-स्पर्श करके उनकी कार में बैठकर उन्हें शीला के घर ले जाता है । वहाँ जाकर शीला के पिताजी शीला से कहते है कि तुम्हारी माता बहुत बीमार है । इसलिए मैं तूम्हे ले जाने के लिए आया हूँ । लम्बी बीमारी के बाद शीला की माता का देहान्त हो जाता है । और घर का काम-काज करने के लिए संजोग से शीला की सखी कुसुम से ही उसके छोटे भाई महेन्द्र के साथ शादी हो गई। शीला के पिता की मृत्यु हो चुकी थी । इसलिए शीला कानपुर में ही रहती थी। भाभी कुसुम के आ जाने से महेन्द्र को रोटी का सहारा मिल गया था । तब शीला पुनः अहमदाबाद लौट गई । शीला के आने के बाद श्यामू एक दिन रात को दस बजे शिला केव घर का दरवाजा खट-खटाते हैं । शीला के पति प्रकाश बाहर निकलते हैं और श्यामू को पहचानते नहीं है इसलिए वापस लौटा देते हैं । जब एक दिन शीला श्यामू के घर जाती है । तब श्यामू कहता है कि एक दिन मैं तुम्हारे घर आया था । लेकिन शायद तुम्हारे पति मुझे पहचान नहीं पाये । इसलिए मुझे वापस अपने घर आना पड़ा । तब श्यामू दोबारा शीला के घर आता है । और बताता है कि गाँव से चिट्ठी है कि मेरे बड़े भाई अमरसिंह जो घर छोड़कर चले गये थे उनका पता चल गया है । तथा जाते वक्त वे अपनी ड़ायरी भूल जाते हैं । वह ड़ायरी प्रकाश के हाथ लग जाती है । उसे पढ़कर

वह शीला और श्यामू के बीच हुए प्रेम के रिश्तों को जान जाते हैं । तथा अन्तिम में श्यामू ने लिखा है कि उसकी पत्नी रानी को कैंसर है । जिसका इलाज असम्भव है । रानी को अब भगवान ही बचा सकते है । उसके कुछ दिनों बाद ही प्रकाश की बदली मध्यप्रदेश में हो जाती है तथा वहीं पर कार एक्सीडेन्ट में उसकी मृत्यु हो जाती है । शीला को जब पता चला तो वह प्रकाश को ढूँढने निकल पड़ी । मध्यप्रदेश के इसी जंगल में शीला की मुलाकात डाकू अमर सिंह से होती है । जो शीला को काफी मदद करता है । उसके बाद अमर सिंह से गुफा में जाकर शीला मिलती है । तब अमर सिंह शीला को ढ़ेर सारा धन देता है । शीला किसी तरह अपने भाई महेन्द्र के घर पहुँची और वहीं रहने लगी । जब काफी दिनों तक शीला श्यामू के घर नहीं आई तब एक दिन स्वयं ही श्यामू शीला का हालचाल पूछने उसके घर पहुँचा । तब पड़ोसी लोगो ने बताया कि एक एक्सीडेट में शीला के पति का स्वर्गवास हो गया तथा अब शीला अपने भाई महेन्द्र के साथ रहती है । तब श्यामू शीला के घर जा पहुँचा । शीला ने बड़े आदर से श्यामू को बैठाया । दोनों ने अपनी व्यथा-कथा सुनाई । और श्यामू शीला को लेकर अपने घर आता है । तथा रानी का इलाज करवाता है । कई इंजेक्शन और दवा देने के बाद रानी की हालत लथड़ती गई । तीसरे दिन कैन्सर अस्पताल में रानी ने दम तोड़ दिया । तभी अचानक डाकू अमरसिंह शीला का घर पूछते-पूछते आ पहुँचा । श्यामू गहरी नींद में सो रहा था । आखिरी वाक्य डाकू इतने जोर से बोला कि श्यामू झझककर उठ बैठा। श्यामू के उठने के पहले ही डाकू जा चुका था । और दूसरे दिन रात को दस बजे फिर आऊँगा ऐसा कहकर चला जाता है । दूसरे दिन रात को बड़ी बेसबरी से डाकू अमरसिंह का इन्तजार करते है । और डाकू अपने वादे के मुताबिक रात दस बजे अपने साथियों के साथ आ जाता है । वहीं पर श्यामू के साथ उसकी मुलाकात होती है और जब उसे पता चलता है कि श्यामू और कोई नहीं स्वयं उसका छोटा भाई है । तब वह खुश हो जाता है । तथा शीला और श्यामू की शादी करवाकर वह भी उनके साथ रहने लगता है।

(७) 'जमीन' उपन्यास की कथावस्तु :

डॉ. सूर्यदीन यादव के लेखक का मुख्य आधार जमीन और वह माटी हैं जिसमें वे धूल - धूसरित होते रहते हैं । उसी माटी के लोंदे से एवं जमीनाधार पर चाहे - अनचाहे, जाने - बेजाने जो कुछ बन जाता है, वही कागज पर उतर आता है । कागज - कलम में अटूट रिश्ते की तरह जमीन और उपज का अभिन्न नाता है । यादवजी बिना किसी लाग - लपेट एवं स्वाभाविक रुप से सच को उसके उसी रुप में कह देनेवाले

आधुनिक रचनाकार माने जाते हैं । यह कृति दो परिवेशों की रागात्मक जमीनी कथा है जिसमें अनबोल जमीन काम करती जाती है । उसकी उपज देख लोग बिसूरते हैं । उपज स्वाभाविक प्रक्रिया है । जमीन की हर उपज जायज होती है ।

'जमीन' उपन्यास इक्कीसवीं सदी में भी अपने ग्राम्य जीवन की फलद्रुपता एवं विविधता का प्रतिनिधित्व करता है । 'जमीन' रचनात्मक ऊर्जा से संलग्न एक उत्तम रचना है । जिनके पाँव जमीन में धंसे हैं वे इस मटमैले तन से प्यार, जीवन्तता एवं मानव मूल्यों को पहचान सकते हैं । जमीन एक दिशा दिखाती है, समभाव विश्व व्यापकता एवं विभिन्नता में भी एकता के दर्शन होते हैं । शहर की संस्कृति कृत्रिम बनती जा रही है । फिर भी किसी न किसी रुप में जमीन से तो जुड़ी हुई है । रवि, वनराज सिंह, शीत, दीपाली, संतराम मामा आदि इतने जीवंत पात्र हैं कि वे हमारे भारतीय लोकजीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं । स्त्री या पुरुष की निधि हैं । जमीन किसी की निजी या बपौती नहीं होती है । वह सार्वजनिक, सर्वराष्ट्रीय बल्कि विश्व की धरोहर होती है । धरती या जमीन की गोद और आकाश सी छत्रछाया के बिना भी हवा की कोख से असंख्य जीव सृष्टि जन्म लेती है । दूसरी तरफ वनराज सिंह एवं दीपाली के बीच रहे संबंध की चर्चा पूरे गाँव में सुनकर वनराजसिंह की बेटी शील वनराजसिंह से झगड़ा करती है तब वनराजसिंह उत्तेजित होकर शील को एक चाटा मारते हैं तब शील कहती हैं कि "अरे वो बाप कसाई कहीं के..... जाओ उसी अपनी रखैल को मारो ।"[१७] शील रवि को भी बताती है कि बटन टाँकते समय तागा काटने के लिए दीपाली ने अपना मुँह बाबूजी की छाती से चिपका दिया था । रवि – शील को समझाता हैं कि मनुष्य दूसरों की बुराइयों का पर्दाफाश करके स्वयं ही लोगों की नजरों में गिर जाता है । औरत अपनी वाणी द्वारा स्वयं ही बदनाम हो जाती है । अपने साथ वह पुरुषो को भी लपेट लेती है । मनुष्य को बदनाम करने में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक माहिर होती हैं । पर शील तो शील है ! उसकी सच्ची एवं नेक बातें हवा में तूती की तरह बजकर रह जाती हैं । सच बहुत की कडवा एवं अप्रिय होता है । शील का सत्य कथ्य साहब के कानों में खौलते तेल सा पड़ता है । दिपाली तकरीबन पचीस – तीस वर्ष की होगी । कम उम्र में विधवा होने का मतलब यह तो नहीं होता कि औरत की जवानी विधवा हो गई । शरीर और मन तो दीपाली का जवान ही है । एक जवान औरत का जवान पुरुष की तरफ आर्कषित होना स्वाभाविक है । दीपाली ऐसे भी रुप रंग में मोहक हैं । देखने में. सुंदर है । उसका गोल – मटोल भव्य मुखमंडल किसी गुलाब के फूल – सा सदा खिला रहता है । खिले फूल पर भौरें का बैठना रसपान करना स्वाभाविक है । साढ़े पाँच फुट ऊँची बड़ी – बड़ी कजरारी आँखे

और बड़े - बड़े नितंब तक लटकते काले - काले बाल, पतली कमर पर सितार के तार जैसे झनझनाते से प्रतीत होते हैं । ऐसे छलकते यौवन को देख साहब ही नहीं अनेक मचलते युवकों की लार सरक जाती होगी । साहब और दीपाली एक ही रंग रुप के हैं । इस लिए स्त्री - पुरुष का सहजाकर्षण प्रकृतिदत्त ही है । उसका यौवन और चलने की अदा देखकर युवकों की छाती पर सांप लोट जाते हैं । दूसरी तरफ आस - पास के लोगो ने देखा था कि रामसेवक और इला नामक लड़की एक ही कमरे में काफी देर तक अंदर से बंद करके क्या कर रहे थे । काफी देर बाद इला कमरे में निकलकर चली गई थी । कुछ लोगों ने इला के पिता से यह बात कह दी । अपनी बेटी के साथ ऐसा घिनौना दुष्कृत्य सुन प्रधानजी क्रोधावेश में उखड़ पड़े थे । रामसेवक को पुलिस केस करने की धमकी देकर दस हजार रुपये ऐंठ लेते हैं । इधर गाँव में हिन्दू - मुसलमानों के बीच झगड़ा हो जाता हैं । हिन्दू - मुस्लिम और मंदिर - मस्जिद का का मामला गुजरात के हर जिले में है । जहाँ - जहाँ मंदिर हैं वहाँ मुसलमानों ने मस्जिद बनवा लिये हैं । गाँव में ही एक प्रेमिका को उसका प्रेमी धोखा देने के कारण आत्महत्या कर लेती है । गाँव के लोग तरह - तरह की बातें करते हैं सचमुच आज के इस विज्ञान के युग में कोई भी व्यक्ति मंत्र द्वारा कर्ण से जन्म होने और शीप के बूँद पी लेने से हनुमान जी के जन्म होने की बात नहीं मानेगा । और जायज - नाजायज हर बच्चे को जीने का अधिकार तो होता ही है । जमीन खर-पतवार सबको उगाती है और पालती पोषती है।

गाँव के मास्टर जी रवि को बताते हैं कि बच्चे सच्चे होते हैं । अपनी चाटुकारिता, लपंटता एवं मस्कारी छुपाने के लिए लोग सच्चे निर्दोष बच्चों को मारते - पीटते हैं । बच्चे के न मानने पर उसे पागल की संज्ञा दे देते हैं । "अरे दीपाली और फोरेस्ट ओफिसर की प्रेम - लीला गाँव के सारे लोग जानते हैं ।"[१८] हमें हर परिवेश के साथ ढ़लना आता है, हर किसी के साथ घुलना - मिलना आता है, हर परिस्थिति का सामना करना आता है और सबसे खास बात यह हैं कि हमें दूसरों के दोष न देखकर अपनी खुद की गल्तियों एवं दोषो को भी स्वीकार करना चाहिए । फिर भी रवि सोचता हैं कि दीपाली देखने में तो चरित्रवान लगती है । इसका दोष मात्र इतना है कि यह हँसमुख खूबसूरत जवान और विधवा है । दीपाली रवि से कहती है कि अरे मैं क्या नहीं जानती । स्त्री ज़ो ठहरी। शंकर भोले थे, जो बात वे नहीं जानते थे, उसे पार्वती बताती थी, लेकिन पुरुष प्रधान समाज अपनी थोथी दम्भिकतावश स्त्री को पैरों के नीचे की धूल समझता है ।" अरे, रामचन्द्र भगवान ने भी सीता को घर से निकाल दिया था धोबी के कहने से । एक चमचे के कहने से गौतम ने अहिल्या को निकाल दिया था ।"[१९] दीपाली रवि को चाय

लेकर आती है तब रवि कहता है कि दीपाली चाय जैसा ही जीवन है । यह कभी मीठा लगता है, कभी फीका । इसके अनेक रंग हैं । अनेक उतार – चढ़ाव हैं । डरता हूँ कहीं उतार – चढ़ाव में तू मोच न खा जाये । माता – पिता अपनी बेटियों को समझाते हैं कि देखना बेटी, कही ऊँचे – नीचे गोड़ न पड़ जाये । सँम्हल के चलना । अरे "फूलो में सुगंध, सौन्दर्य और रस होता है, तभी उसे फूल कहा जाता है । उन गुणों से हीन होने पर फूलों को फेंक दिया जाता है । इस गाँव की गली, टहनी, या लौंची से जुडी तुम एक फूल नहीं हो तो और क्या हो ।"[२०] जमीन की माटी से कुछ उगाने वाला महान होता है । जमीन और दीपाली में काफी कुछ साम्य है । वह इस गाँव की विधवा बेटी है । कुछ लोग कहते हैं कि दीपाली पति त्यक्ता हैं । ऐसी हैं, वैसी हैं । मेरा मन नहीं मानता कि इतनी कामकाजी औरत को किसी नेक पति ने त्याग दिया होगा । और रही बात चरित्र की तो जिसके आगे पीछे कोई नहीं होता हैं, उसे गलत अंदाज से देखना लोगों का स्वभाव है । उस पर लांछन लगाना कुछ लोग अपना धर्म – कर्म मानते हैं। चन्द्रमां बोल नहीं सकता इसलिए लोग उस पर कलंक लगाते हैं । उसके प्रकाश को न देख कर उसके धब्बे को ही देखते हैं । अहित्या और मीरा के साथ यही अन्याय किया गया था । दीपाली का एक ही भाई था वह भी शराबी निकला । गाँव छोडकर बँदरिया के साथ चला गया। भाभी कहती थी कि गाँव की जमीन – जायदाद बेच दो, पैसा जमा कर दो । दीपाली लड़ पड़ी थी । खबरदार जो मेरे बाप की जर – जमीन को बेचने की बात की । मैंने घर जमीन अपने नाम करवा लिया । इधर वनराज के घर के गाँव से चिट्ठी आई कि वनराज की पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया है । वनराज को बेहद चिंता हुई कि जब पत्नी के साथ कोई संसर्ग ही नहीं किया तो वह बच्चा किसका है । घर रह लोकदृष्टि से तथा ससुराल की जमीन प्राप्त करने की लालच से एक महीने तक पत्नी के साथ रह आया था । अब उस बच्चे को स्वीकार करना होगा। वह नहीं कह सकता कि बच्चा मेरा नहीं है पर वनराज ने मन में निश्चय कर लिया कि कुछ भी हो, पर उस पत्नी से कभी नहीं मिलूँगा । उस पत्नी द्वारा बच्चे का जन्म होना इस बात का प्रमाण हो गया है कि वह अनपढ, गँवार और आवारा के साथ छिनार भी है ।

इधर गाँव के ठेकेदार लोग वनराज के बच्चे को लेकर तरह – तरह की बातें करने लगे कि "ई तो जबरदस्ती वाली बात हुई भैया, पति परदेश में दूसरी जमीन को जोते, बोये काटे और यहाँ गाँव में पत्नी यार दोस्तो से मिलकर बच्चा पैदा करे । जब वनराज यहाँ रहता नहीं था तो वह इस बच्चे का पिता कैसे हो सकता है ?"[२१] वनराज कहता

है कि भले ही इस बच्चे के निर्माण में मेरा शरीरी और खूनी रिश्ता न हो पर मानसिक और आर्थिक रुप से पूरा - पूरा सहयोग इसे और इसकी माँ को मिलता रहेगा । समाज और लोकदृष्टि में यह बच्चा मेरी पत्नी के गर्भ से जन्मा इस औरत के पति का हो सकता है । आपकी निगाहें हमें नहीं देखती हैं कि वहाँ परदेश में कितना अधर्म करता हूँ । पुरुष कुछ भी करे उसे कोई नहीं देखता है । लेकिन स्त्री का पेट और उससे पेट से जन्मा बच्चा सब कुछ कह देते हैं । ऐसी अनेक संतानें, जिन्हें तत्कालीन समाज द्वारा लावारिश एवं नाजायत कहकर अपमानित किया गया था । उन सब पर ही तो गीता, महाभारत, रामायण और साहित्य, इतिहास आधारित हैं । वे सभी संतानों ने अपने समय के तथा कथित ढोंगी, स्वार्थी समाज का डँटकर मुकाबला किया था और विजय प्राप्त किया था। उन्हीं महानुभावों की श्रृंखला की एक कड़ी मैं हूँ । अरे, कृष्ण को देवकी जे जन्म दिया था और पाला था यशोदा ने । इधर रवि सोचता है कि हर स्त्री की तरह दीपाली को ईर्ष्या होती होगी कि यह लड़की जब घर का सारा काम करने लगेगी तो उसकी छुट्टी कर दी जायेगी । इसलिए वह शील को अपना सारा हाथ (कला) नहीं सिखाती होगी। वैसे दीपाली कोई गलत नहीं है । चरित्रवान है । समाज और विशेषकर पुरुष वर्ग ने उसके साथ अन्याय किया है । पंचो और न्याय कर्ताओं को ऐसे मामलों में मान लेना चाहिए कि अवैद्य संतानो की माँ ने भी कौशल्या की तरह, अंजनि और कुंती की तरह कोई दिव्य फल खाकर ही माँ बनी रही होगी । रवि शील को बताता है कि दीपाली नेक स्त्री है । उस पर विश्वास करो । वह डोरे - ओरे डालना जानती होती तो, अब तक कितने को अपने मोहपाश में फँसा-चुकी होती । अपनी ही जाति की स्त्री पर लांछन लगाना, नारी जाति का स्वभाव है फिर तुम्हारे पिताजी भी ऐरे - गेरे, नत्थू - खैर नहीं हैं कि उन पर कोई डोरे डाले या वे किसी जाल - फरेब में फँस जाये । काम वाली काम करने आती है डोरे डालने नहीं । लोग तो सीता पर भी लांछन लगाते थे । रवि संतू मामा को भी समझाता है कि लोग बातें करते हैं कि जम्मू - कश्मीर में मुसलमानों ने आतंक मचा रखा हैं । आप दूर की बात करते हो । यहाँ अपने गाँव को नहीं देखते हो । हजारों हिन्दुओं के घर हैं । दो - तीन घर मुसलमान के हैं । जब आप अपने गाँव का फैसला नहीं कर सकते हो - तो वहाँ जम्मू - कश्मीर और पूरे भारत के लिए क्या कर सकोगे ? इनके सामने शक्ति से नहीं बुद्धि से काम लेना पडता है ।

यहाँ देखे कि "राममंदिर वाले कृष्ण मंदिर में नहीं जाते हैं । गायत्री सम्प्रदायवाले स्वामीनारायण में नहीं जाते हैं । यहाँ के क्षत्रियों ने भाथीजी महाराज के मंदिर अलग बनवा लिये हैं । हनुमान, शंकर, और गणेशजी आम तौर पर कामन, हर मंदिर में स्थापित होते

हैं । रामजी मंदिर में ही स्वाध्याय वाले अलग बैठते हैं ।"[२२] जो मनुष्य अपना फर्ज, धर्म, उत्तरदायित्व निभा न सकता हो वह मानव कहलाने का अधिकारी नहीं है । वफादार कुत्ता जब कभी गलत कर बैठता है, तब उसका मालिक उसे डाँटता - फटकारता है । वनराज सिंह शील की शादी करके जिम्मेदारी से मुक्त होना चाहते हैं । ज्यादा पढ़ाकर उसकी कमाई हमें थोड़े खाना है । यही तो हमारे पुरुष प्रधान समाज की कमजोरी है । एक स्त्री वह थी जिसने हम जैसे पुरुषों को जन्म दिया । वही पुरुष अपनी बेटी के लिए वैसा क्यों सोचता है ? पढ़ा - लिखा समाज भी बेटी के प्रति इतना उदासीन क्यों है? भेदभाव सर्वप्रथम माता - पिता ही उपजाते हैं । संतान के जन्मदाता ही भेदभाव के जन्म दाता होते हैं । लोग समझते हैं कि बेटी तो दूसरे के घर चली जायेगी । ऐसा समझना हमारी संकुचित धारणा एवं अज्ञानता है । नारी के साथ हो रहे अन्याय में दूसरी नारी की जबरदस्त भूमिका होती है ।

रवि वनराज सिंह का पत्र पढ़कर कहता है कि - " वाह रे बाप । तुम भी बाप और मरद बनने की बेकार जुर्रत करते हो । ऐसे लोग जो अपनी जर-जमीन को नहीं पहचानते हैं वे दूसरी जमीन के लिए क्या कर पायेंगे ? जो अपनी बेटी को कांटा समझता हो, वह दूसरी की बेटी को क्या समझेगा ?"[२३] कोई दर्पण हमारे चेहरे के दाग को साफ - साफ बता देता हैं । ठीक उसी प्रकार बच्चे सच - सच बता देते हैं इसीलिए शायद वनराजसिंह अपनी बेटी शील को कांटा कहता है । दूसरी तरफ रवि की माँ रवि की पत्नी को साथ ले जाने से मना करती हुई कहती है कि "छुट्टा सांड खा-पीकर ढेंकारता रहता है । पर वही जब खेत में जोत दिया जाता है तो उसकी हड्डी - हड्डी दिखाई पड़ने लगती है ।"[२४] माँ की बाात सुन मैं तो हँसने लगी । फिर हँसी रोकती हुई मैं बोली - माँ मैं कोई खेत जमीन नहीं हूँ कि उनको जोत - पोतकर दूबला - पतला कर दूँगी। मास्टर जी रवि को अपनी किताबों के प्रति प्रेम कुछ इस प्रकार प्रकट करते हैं इस अस्सी वर्ष की उम्र में भी मैं उन्हें इतना प्यार करता हूँ, जितना की लोग जवानी में अपनी पत्नी से प्यार करते हैं । जिसने थोड़ा सा अक्षरज्ञान प्राप्त कर लिया वह स्वयं को सबसे बडा पढ़ोकर या तुर्रमखाँ समझने लगता है । उनमें और कंठीधारी भक्तों में क्या फर्क ? कंठीधारी भक्त भी तो स्वयं को भगवान का अंश समझने लगता है और ऐसा ढोंग करता है कि वह अपने ही परिवार वालों के साथ रहना, खाना, उठना, बैठना बंद कर देता है । कहता है तुम संसारी हो, हम संन्यासी गाँव वालों के कुछ लगे - सगे अमेरिका में रहते हैं । दूसरे के उतारे हुए सेकन्ड कपड़े पहनकर लोग स्वयं को नसीबदार समझते हैं और शान से बोलते हैं कि ए कपड़े अमेरिका के हैं । तभी गाँव के खेत में नवजात

बच्चा पाया जाता है । कई लोग तो दीपाली को शंका की दृष्टि से देखने लगे थे कि हो न हो, वह बच्चा दीपाली का ही होना चाहिए । दीपाली और साहब को लेकर तरह - तरह की शंका - कुशंका होने लगी । जब कि बढ़ाइन काकी कहती है बच्चे को जन्म देने के बाद मछार अपनी बेटी को भगा दिया है । मछार कहता था कि उसकी बेटी रमीला की शादी हो गई है वह ससुराल में चली गई है । केशराम और रमीला केले के खेत में आसनाई करते हुए कई बार पकड़े गये थे ।

अब वनराज सिंह बर्दास्त न कर सके । सामने आये बोलने लगे गाँव - वासियों, यह गाँव जितना आपका हैं उतना मेरा भी है मैं जंगल की रक्षा करता हूँ तो गाँव - समाज और राष्ट्र की रक्षा करना अपना धर्म मानता हूँ । आप सबसे अधिक मुझे इस गाँव और गाँव के लोगो की चिंता है । दिपाली को मेरे साथ जोड़कर गाँव में जो अफवाहें फैलायी जा रही हैं, वे निर्मूल हैं, गलत हैं । दिपाली मेरे घर का कामकाज अवश्य करती थी, पर मेरा उसके साथ कोई गलत संबंध नहीं था । तभी भीड़ के बीच में बढाइन काकी बोली वह बच्चा मछार की बेटी रमीला का है । वह बच्चा वास्तव में केशराम का है। रमीला और केशराम साथ पकड़े भी गये थे । दीपाली तू रोती क्यों है ? तूने मुझे राखी बाँधा था । मैं तेरी रक्षा करुँगा । मैं जानता हूँ कि तू निर्दोष हैं । वह बच्चा तेरा - मेरा नहीं है । वह केशराम का भी नहीं है पर उसकी जमीन का है । मैं उस दूसरी जमीन को अपनी समझता हूँ । उस जमीन में जो कुछ भी कुटकुटार, मंदार, धंतूरा, घास - पतवार उग जाता है उसे भी मैं उसी कोख से जन्मा मानता हूँ । जो जमीन का है उसे मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ और तू उसे स्वीकार करके बिना पति के और बच्चे के जन्म से बिना ही माँ बन जायेगी । लोग तो अनाथ - आश्रम से लाकर अपनी संतान बना लेते हैं । वह तो इसी गाँव का अपनी ही जमीन का दिया हुआ बच्चा हैं, जिस जमीन में आज - तक अनाज उगता रहा है उसी जमीन ने आज एक बच्चे को जन्म दिया है । सीताजी का जन्म भी जमीन से हुआ था । राजा जनक सपत्नी हल जोतते थे हल के फाल से घड़ा टकराया था । घड़े से एक कन्या निकली थी । आज दूसरी जमीन अनव्याहे ही माँ बन गई है ।

'जमीन' कथाकार सूर्यदीन यादव का साद्य प्रकाशित नवीनत्तम उपन्यास है । जो उत्तरप्रदेश एवं गुजरात दो संस्कृति एवं परिवेशों के ताने - बाने से बुना गया एक संघर्षात्मक उपन्यास है । स्त्री - पुरुष भी नहीं, बल्कि उस जमीन की हर उपज सार्वजनिक, सर्वप्रिय अमूल्यनिधि होती है । जमीन किसी की निजी बपौती नहीं होती है । हम जिसे गैर,

नाजायज समझकर अत्याचार करते हैं, उस जमीन की उपज यह कृति है जिससे हम अनजान अपरिचित होते हैं । वह भी किसी न किसी रुप में अपना होता है ।

(८) 'एक सफर के मुसाफिर' उपन्यास की कथावस्तु :

रामलाल भैया के पुत्र की बारात में गाँव के सभी लोग जाते हैं रामलाल ने गाँव के बारातियों के मनोरंजन के लिए नाच - नाचने वाली को भी बुलाया हैं । जिससे गाँव के सभी बारातियों का मनोरंजन हो सके । बीबीजी नाचती हुई दर्शक के आगे बैठ गई। नौजवान शरमाकर उठ खडा हो गया । सभी नौजवान बीबी के सामने बैठने में डरते थे। लछिमन नाच देखते - देखते सोचने लगा रामलाल के लड़की बारात बड़े धूमधाम से आई थी । सस्ती के जमाने में उसने दस हजार तिलक चढ़ गया था । रामलाल की बारात में लछिमन समधी के पद से गया था । सुशिक्षित होने, एवं ठाठ - बाट में रहने के कारण रामलाल ने लछिमन को विशेष रुप से आमंत्रित किया था । रामलाल मामा अपने लड़के की बारात में हाथी - घोडो के साथ गया था वहाँ पर हाथी को भोजन नहीं मिलने पर गणेशजी नाराज होकर खेती का नुकशान कर देते हैं । बाद में बारातियों के साथ खिचड़ी खाने के लिए दुल्हे को बुलाया गया । बारात में खिचड़ी का विशेष महत्व होता हैं खिचड़ी दिव्य मिलन का प्रतीक । इसी समय सारा लेन देन होता हैं। उधर रामलाल नाराज थे कि बारात में इतना सारा खर्च किया और खिचड़ी पर मात्र एक ताँवे का हंडा देकर खिला देना चाहते हैं । रामलाल ने दूल्हे को सिखा दिया था कि जब तक मोटर साइकल न मिले तब तक नहीं खाना बेटा । लेकिन लड़की के बाप ने मोटर साइकल तो क्या साइकिल देने से भी इन्कार कर दिया । दूसरी तरफ लछिमन का गौना भी आ गया उसकी ससुराल वाले डरते थे कि लछिमन ज्यादा पढ़ा - लिखा होने की वजह से सावली लड़की छोड़ न दे । लछिमन वजीफा की परीक्षा के लिए फार्म भरना चाहता था । खेतों मे जानवर चराते समय धनबल और नटबल के बीच कुश्ती होने लगी । धनबल ने कुश्ती जीतने के लिए नटबल के गुप्तांग पर लात मारकर पीठ लगा दी । किन्तु लछिमन धनबल से तीन साल छोटा होने के बावजूद एक न्यायिक दृष्टि से देखते हुए बोला - " किसी के गुप्तांग या नाजुक इन्द्रिय पर खतरनाक, घातक दाँव - पेंच लगाना सरासर बेईमानी हैं, ज्यादती हैं । धनबल ने गलत दाँव लगाया था ।"[२५] इसी बात को लेकर नटलाल की माता ने धनबल के पिता से शिकायत की । तब धनबल के पिता बनबल को लाठी से मारने लगे । धन पिता के डर से घर छोड़कर भाग जाता हैं । लछिमन को जब इस बात का पता लगता हैं तब वह कहता हैं कि कुश्ती में तो हार - जीत होती रहती हैं । इसमें मारने पीटने की बात किसने उपजा दी ? यह बात सच हैं कि

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

आग लगती नहीं लगा दी जाती हैं । करुनी लछिमन को बताती है कि इस गाँव में आग लगानेवालों की कमी नहीं हैं जानते हो किसी ने माँ के कान भर दिये थे कि सुर्र खेलने के बहाने लछिमन जान बूझकर भिड गया था । और पूरवाही भौजी को जानते ही हो कि नून मिर्च लगाकर तनिक सी बात को हनुमान की पूँछ की तरह बड़ी करके आग लगा देती हैं । अरे उसी भौजी ने गाँव की एक औरत से यह भी कह दिया था कि लछिमन ने करुणी को दाँत से काट दिया था । लछिमन उसके नजदीक पहुँचकर उसके कंधे पर हाथ रखकर बोला – " करुनी तू मुझे क्या समझती हैं ? और तू स्वयं को इतना कमजोर क्यों समझती हैं । मैं कोई भेड़िया थोड़े हूँ कि बकरी पर टूट पडूँगा। करुणी मेरे लिए तो ठीक, तू हर पुरुष के लिए शेरनी हैं । तू एक मरद बनकर अपने भैया को मारने वाले का नाम पूछने आई । यह प्रमाणित करता हैं कि तुझ जैसी लडकी इस गाँव में शायद नहीं हैं । तू भले पढ़ी नहीं हैं पर मुझसे अधिक विद्वान हैं ।"[२६] करुणी लछिमन से एक साल छोटी हैं । पर विवेक और संयम की ऐसी देवी कि बात का बतंगड नहीं होने देती हैं । कई बार चाहा कि उसे अपने बाँहों में भर लूँ। लेकिन उसने मुझे कामाँध – समझा । और दूर का प्रेम अमृत की तरह अमर होता हैं। यह गाँव – समाज मर्यादाओं के काँटे से घिरा हैं, यहाँ मुक्त रुप से कोई प्रेम तो क्या खुलेआम मिलकर हँस – बोल भी नहीं सकता हैं । धनबल और नटबल के पिता से उसी अखाडे वाली बात को लेकर काफी झगड़ा हो गया । लछिमन की भाभी ने बताया कि वे तुम्हारा भी नाम ले रहे थे लेकिन तुम्हारे पिताजी को यह बात मैंने नहीं बताई। उनका गुस्सा नाक पर होता है – "भाभी हाथी की सूँड जैसे आगे क्या लटकाये हो । सूंड को ऊपर उठा लो नहीं तो उसमें कोई चींटी हल जायेगी तो, राम न करे ऐसा हो, तुम्हारी सूँड बहुत लंबी हैं । चाल भी हाथी की तरह ।"[२७] लछिमन की माँ ने कहा तो तू उसका मजाक उड़ाती हैं । खानदानी लड़कियाँ घूँघट तो काढ़ती ही हैं । वह नारी की मर्यादा हैं, तभी धनबल की माँ लछिमन से पूछती हैं कि अखाड़े में क्या हुआ था क्योंकि मेरी पड़ोसिन भतरुकाटिन ने करुणी के चाचा से झूठ – मूठ मढ़ दिया था कि धनबल ने नटलाल की जाँघ के नीचे लात मारा था । नटलाल का बाप मेरे घर रात को आये थे ओरहन देने । बस बिना पूछे धनबल को मारने पीटने लगे । हाँ नटलाल और धनबल कुश्ती लड़ते थे । नटलाल की पीठ लग गई थी । हार जाने पर नटलाल रोने लगा था। कुश्ती में तो हार – जीत होती ही हैं । सारा दोष तुम्हारी जेठानी पड़ोसन का हैं । उसने तुम्हारे घर में फूट डाल दी । बाप – बेटे में झगड़ा करा दिया । और धनबल घर छोड़कर चले गये । इस गाँव के जवानों की यही कमी हैं । वे गहराई से सोच – विचारकर कदम नहीं रखते हैं । बाबा ने लछिमन को बताया कि रामचेत की चिट्ठी आई हैं वह फौज

में भरती हो गया हैं तथा उसने राजा की जमीन इतनी चालाकी से अपने नाम पट्टा लिखवा लिया कि भाइयों को उसका सुराग तक न मिला था । रामचेत बड़ा स्वार्थी हैं। इसलिए रामपाल ने चालाक रामचेत को अपने खेत वगैरा में हिस्सा नहीं दिया था हालांकि रामचेत चतुर चालाक तो थे ही हिस्से के लिए सुल्तानपुर में मुकदमा दायर कर दिया था । लेकिन रामचेत मुकदमा हार गये थे । उधर हालापुर में लहुरे रामसमुझ मामा सरकारी चौकीदार थे । वे दरोगा के साथ रहते थे । इसलिए रामचेत बहुत चाहकर भी दोनों छोटे भाइयों को अधिक तंग परेशान नहीं कर पाते थे । हालांकि हाथापाई, गाली – गलौज तो अक्सर खेते – मेडे, राही – बाटे हो जाया करती थी ।

काफी दिन बाद धनबल की बम्बई से रजिस्ट्री आई कि वह फौज़ में भरती हो गया हैं रजिस्ट्री पढ़कर लछिमन काकी को जाकर समाचार देता हैं कि खुशिया मनाओ धनबल फौज़ में भर्ती हो गया हैं । लेकिन काकी का इकलौता बेटा फाज में भरती हुआ जानकर काफी दुःखी हुई तब लछिमन बोला – " देश की रक्षा करना तो मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म हैं । धनबल इस गाँव की गरीबी, बेकारी और वेगारी से मुक्त हो गया।"[२८] रामचन्दन ने लछिमन को कहा कि धनबल काकी का इकलौता बेटा हैं । दूसरी बात यह कि पुत्र मोह काकी को पागल बना देता हैं । ममता का फूल एक ऐसा अमूल्य निधि हैं कि उसे लोग आँखों से ओझल होने नहीं देना चाहते हैं । धनबल ममता का एक फूल था । जानते हो जिस पेड़ में फल नहीं लगते हैं, उसे लोग पसंद नहीं करते हैं। माँ ने लछिमन को बताया कि धनबल की गरजती आवाज सुनकर लोग थर्रा उठते थे। वह गाँव के लिए एक श्रेष्ठ शक्तिशाली, तेजस्वी, निर्भय युवक था । लछिमन की पढ़ाई में रामचन्दन भैया का बड़ा योगदान था । वही रामचन्दन भैया पूना से आकर बम्बई में ड्यूटी करते हैं । रामचन्दन ने पत्र द्वारा बताया कि बम्बई में लड़कियों को गायब किया जा रहा हैं । केवटराम और विजय खुफिया पुलिस विभाग में रहकर इसकी जाँच कर रहे हैं । लछिमन को लगा कि नरसासुर अब भी जीवित हैं क्या । सीता हरण करने वाले रावण को हरसाल दशहरा में जलाया जाता हैं लेकिन उसकी नाभि के अमृत को आज के तथाकथित राम सुखा नहीं पाते हैं । इस लिए हरवर्ष जलाये जाने के बावजूद रावण अमर हो गया हैं । इधर रामजतनसिंह का छोटा भाई सूरजसिंह जब से पुलिस ईन्स्पेक्टर हो गया, तभी से उसके पट्टेदारों के बीच पहँटी – पहँटा हो रही हैं । लछिमन सोचता हैं कि आजादी के बाद आदमी कितना स्वतंत्र हैं उसकी अंर्तआत्मा के झाँकिये तो पता चलेगा कि वह अपने ही घर, गाँव में स्वयं को असुरक्षित, शोषित और गुलाम महसूस करता हैं, नारी आज उन बंधनों, मर्यादाओं से मुक्त नहीं हैं सामान्यजन आज भी स्वयं

को अछूत और सर्वणों से अलग समझता हैं । अमीर – गरीब का फासला – फासला ही बना हुआ हैं । हिन्दू – मुस्लिम के दंगे आये दिन होते ही हैं, गाँव घर छोड़कर लोग शहर से जुड़े हैं । यहाँ जिन विशेष पात्रों के सहारे कथा साकार होती हैं वे हैं रामचन्दन, रामसदन और रामअचत । विजय, सूरज, केवल और उनके पारिवारिक सदस्यों के साथ लछिमन की जबरजस्त भूमिका हैं । धनबल के बेटे को परदेसिन ने चढ़ा दिया कि उसकी पत्नी ससुर का पैर दबाते – दबाते उससे फंसी हैं बेचारी बहुत मारी जाती हैं । उसका बेकसूर ससुर भी मारा जाता है । जो जैसा हैं वैसे ही दूसरों को समझता हैं । परदेसिन जिन्दगी भर चोरी छिनारा करती थी । हजार बार पकड़ी गई थी, मारी गरियाई गई थी पर उसकी आदत अभी भी गई नहीं । जैसी खुद हैं वैसी ही दूसरी औरतों को समझती है । जानती हो झूठी बात को सचमानकर अहित्या के पति ने उसे घर से निकाल दिया था । वही गलती भगवान राम ने धोबी की बात सच मानकर किया था । लछिमन ने अपनी पत्नी को कहा कि समझदार हो उसमें कोई शक नहीं । पर पत्नी या स्त्री का यह भी दायित्व होता हैं कि समाज के दो पहिए स्त्री – पुरुष के बैलेन्स भी ध्यान रखें।

जानती हो, भस्मासुर जब शंकरजी को भस्म करने के लिए दौड़ रहा था और शंकरजी प्राण बचाने के लिए भागे जा रहे थे, तब विष्णु भगवान ने लक्ष्मीजी से कहा था कि यह सब तुम्हारे कारण हो रहा हैं । अतः शंकरजी को नारी ही बचा सकती हैं । लछिमन की पत्नी धनबल के लहुरे पुत्र शिवपाल को समझाने गई थी कि तुम्हारी पड़ोसन जान – बूझकर झगड़ा कराती हैं तुम अपने पिता धनबल की सेवा करो । पड़ोसन तुम्हारे माता – पिता के बीच झगड़ा करवाती थी । तुम्हारे पिता ने पड़ोसन को लाठी से मारा था उसी का बदला लेने के लिए पड़ोसन यह सब साजिश कर रही हैं पड़ोसन का बेटा लमेहर सिंह ने डॉ. को एक हजार रुपया घूस दिया था । तब डॉकटर ने धनबल को बेहोशी का इन्जेक्शन लगाकर पागल खाने में भर्ती कर लिया था । हाथ – पैर बाँधकर धनबल को बहुत मारा पीटा था । लछिमन को दादी माँ ने बताया था कि – "वही रामचेत जो एक महीने तक यहाँ पड़ा रहता था, कंगाल था । मेरे पति से रोकर कहता था कि हसनपुर के राजा से कहकर जंगलवाली जमीन हमें दिलवा दे । इनके कहने पर राजा ने जंगलवाली जमीन रामचेत को पट्टा दे दिया था । आज वह बड़ा जमींदार बना बैठा है दो छोटे भाइयों को सुख से खाने कमाने नहीं देता है ।"[२९]

बँटवारे की रेखा खींचने वाले अनेक हैं, थे रहेंगे । गाँधीजी उस सरहद की रेखा मिटाना चाहते थे, किन्तु उन्हें गोली से उड़ा दिया गया । मिटाने वालों को उसी रेखा में दफना दिया गया । सरदार भगतसिंह और वीर अब्दुल हमीद जैसे अनेक शहीदों, के

नामों–लेख मिलते हैं, पर घर, आँगन, परिवार, गाँव – गली के सरहदी विवादास्पद मामले के फैसले करने के लिए सीमा रेखा खींचने वालों के नाम कहीं नहीं मिलते हैं । उसी समय जब रामचन्दन को जब यह पता चला कि लछिमन को महाराष्ट्र में मास्टरी मिल गई हैं तो वे बेहद खुश हुए और बोले – " चलो घर का एक काबिल मास्टर लाइन में आ गया ।"[३०] उधर दूसरी तरफ धनबल की जिंदगी में उसकी पड़ोसन चलनी खुद तो धुरिया धाम से चली गई हैं अब दूसरो को भी बदनाम करके बर्बाद करना चाहती हैं। पर चलनी तो चलनी उसमें तो बहत्तर छेद । धनबल को मारने में चलनी का बेटा भूखल भी था । धनबल को पागलखाने भिजवाकर भूखल परदेश लौट गया । परदेश जाने के पहले चलनी ने गाँव के दहबंगी और मूसरचंद को पाँच हजार रुपये दे गई थी कि धनबल को मार – पीटकर पागलखाने में बंद करवा देना । लछिमन को याद आया कि पहले गाँव वालो पर जमींदारों का जुल्म था । अब गाँव वाले अपने ही घर – परिवार वालों पर जुल्म, जोर – जबरदस्ती करते हैं । उधर बम्बई में दिन दहाड़े लड़कियाँ गायब की जा रही हैं और धर्म के रक्षक, समाज के सेवक और राष्ट्रप्रेमियों के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती हैं । दूसरी तरफ सूरज की बहन शारदा को गाँव के डकैत पैसे प्राप्त करने के उद्देश्य से उठा ले गये । गाँव के सभी लोग घबराये हुए हैं तब लछिमन उनको आश्वस्त करते हुए बोला – " तुम लोग बेकार घबराती हो । रावण – सीता को ले गया था। तो उसका मतलब यह नहीं कि सबको ले जायेगा ।"[३१] सरकार विरोधी पार्टी ने कल एक अखबार में एक अफवाह छपवा दी थी कि क्राँग्रेस सरकार लड़कियों का व्यापार करवाती हैं, ऐसे झूठ विचारों के नेता सरकार को गिराने और बदनाम करने के लिए झूठी अफवाहें पेपर में छपवा देते हैं । नेता ससुरे झुटे स्वार्थ के लिए तरह – तरह की पैंतरेबाजी खेलते हैं, दाँव – पेंच लगाते हैं । तो क्या हम राष्ट्र और मानव कल्याण के लिए कुछ भी नहीं कर सकते । ऐसे देश भक्त विजय पर उसकी पत्नी उर्मिला शक करती हैं और कहती हैं कि "सुनी थी कुत्ते और पुलिस अपने माँ – बाप के भी नहीं होते । जहाँ चाटने को पाते हैं, वहीं दुम हिलाने लगते हैं ।"[३२] सूरज के गाँव से पत्र आया कि तुम्हारी बहन सही – सलामत बाइज्जत लौट आई हैं । चोरों ने रुपये के लिए बेटी का अपहरण किया था । दस हजार रुपये माँगते थे । गाँव घर की अन्दरूनी फूट के कारण चोरियाँ होती हैं घर का भाई विभीषण होता हैं । तभी एक बुर्जुग आकर सूरज को जयराम कहता हैं सूरज ने महसूस किया कि शहरी लोगों की अपेक्षा गाँव के लोगों में मर्यादा, विवेक, सद्भाव, आत्मीयता अधिक होती हैं । भारत गाँवो का देश हैं । अकेला घर, गाँव या समाज नहीं कहलाता हैं । कई घर मिलकर, एक गाँव बनता हैं । घर में परिवार रहता हैं । घर परिवार से कटना गाँव – देश से विलग होना हैं । एक व्यक्ति एक ही साथ

दो नाव पर पैर कैसे रख सकता हैं ? मैं घर - परिवार की चिंता करुँ या यहाँ पर गायब की जा रही लड़कियों की तलाश करुँ ? नजदीकी प्रेम की अपेक्षा दूर का प्रेम अधिक प्रभावशाली, टिकाऊ एवं गाढ़ा होता हैं । विजय खुफिया विभाग में पुलिस अफसर हैं वह गायब की जा रही लड़कियों से खोज की मिशन में लगा हैं इसीलिए रूपा से दोस्ती की हैं वह बहुत ही चालाक, सर्तक लड़की हैं । बिलकुल बिल्ली की तरह फूँक फूंक कर दूध पीती हैं । वही रुपा विजय को बताती हैं कि उसका बोस एक हजार लड़किया इकट्ठी कर रहा हैं । इस कार्य के लिए विश्व में पचास आवाजविहीन विमानों पर चार - चार आदमी, लगभग दो सौ स्त्री - पुरुष कार्यरत हैं । दूसरी तरफ विधानसभा के चुनाव में लछिमन की प्रिसाइडिंग ऑफीसर के रुप में ड्यूटी लगी थी वहाँ पर सहपाठी द्वारा लछिमन को यू.पी. का भैया कहना, कदवा कहकर खिझाना, बावन चाँद कहना । रामचन्दन नौकरी के लिए बम्बई आते समय उनकी अर्धांगिनी लिपटकर खूब रोई थी, इतना प्रेम की वह मेरे लिए सब कुछ सर्मपित कर देती । उसका यही प्रेम मुझे नई शक्ति प्रदान करता है । तभी लछिमन को अपना सहपाठी सीताराम वनमानुष याद आ गया । जिसे मारकर पंडितजी ने स्कूल से भगा दिया था, यह कहकर कि सब वनमानुषै यदि पढ़ लेंगे तो जूठे पत्तल दोने कौन उठायेगा । बचपन में कन्हैया की लीलाएँ यौवन में कृष्ण में कृतित्व और पराक्रम के दर्शन होते हैं तो बुढ़ापे में निराशा नहीं आती हैं । तभी विजय गायब की गई लड़कियों की खोज में लड़की का पैर पकड़कर आवाजविहीन विमान में चढ़ने की कोशिश करता हैं और नीचे गिर जाता हैं तथा गंभीररुप से घायल हो जाता हैं । बाहर कुछ लोग तमाशा का खेल देख रहे हैं काँच की बोतल में भले ही लाल रंग का शरबत भरा हो, पर हमारी दृष्टि में वासना हैं तो उस बोतल में शराब ही दिखाई पड़ेगी । जीर्ण को जब तक छोडेंगे नहीं, नया नवीन कैसे मिलेगा । आजादी के बाद नसबंदी, चकबंदी, मेंडबंदी, सेक्टरबंदी हुई ही हैं । आज अनेक माता - पिता अपने नवजात शिशु को गर्भ और गर्भ के बहार मार देते हैं या मरवा देते हैं, आए दिन भ्रूणहत्याएँ होती हैं। गर्भपात कराने वालों को या भ्रूणहत्या करानेवालों को आधुनिक कंस कहा जाता हैं । लोग अज्ञानतावश कहते हैं कि राम ने पेड़ के पीछे छुपकर बालि को मारा था । राम ने अधर्म किया था, उसे शायद बालि स्वयं नहीं जानता था । लेकिन जब रामलीला होती हैं, उसे हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई सभी देखते हैं । रामलीला में कोई भेदभाव नहीं होता हैं। ताजिया, मुहर्रम भी सभी देखते हैं । देखने - सुनने से कोई दूसरे धर्म या मज़हब का नहीं हो सकता हैं । जब फल - फूल, फूलगी, लौंची, डाल, शाखा और पेड़ - तना में कोई भेदभाव नहीं हैं तो वृक्ष की मूल जड़ को लेकर इतना विवाद क्यों ? सफेद चमड़ी और श्याम - चमड़ी के रंग भिन्न हो सकते हैं । किन्तु

खून तो सबका लाल ही होता हैं । जिस प्रकार से अंधे धृतराष्ट्र को संजय महाभारत के युद्ध का आँखो देखा हाल बता रहे थे उसी तरह से लछिमन बम्बई में तैनात रामचन्दन एवं अन्य सैनिकों की क्रिया - प्रक्रिया को लिखते हुए वर्णित कर रहा हैं । शास्त्रीजी बताते हैं कि - " योद्धा का युद्ध से जुडना, किसान का खेत से जुड़ना, दुकानदार का दुकान से जुड़ना, भक्त का भगवान से जुड़ना, विद्यार्थी का विद्यालय से जुड़ना इत्यादि योग ही हैं ।"[३३]

एस. पी. सूरजसिंह बताते हैं कि लड़कियों को गायब करने वाले दल में रंकीय स्वार्थ संघवाले जुड़े हैं । इनके दल में बड़े - बड़े डॉक्टर, इन्जीनियर, व्यापारी, शिक्षित विद्वान लोग भी शामिल होते हैं । इसलिए इनके दुश्मन से मिले होने की शंका की ही नहीं जा सकती हैं । इन्हें न हिन्दू होने में गर्व हैं, न मुसलमान, न सिक्ख, न ईसाई धर्म और जाति से इनका कोई मतलब नहीं रहता हैं । ये लोग जरुरत पड़ी तो मुसलमान बनकर दाढी - मूँछ लगाकर हिन्दूओं के पर्व पर जो उनका अपना ही होता हैं, पत्थरबाजी करवा देते हैं, दंगा भड़का देते हैं, और एलान करवा देते हैं कि मुसलमानों ने हिन्दुओं के पर्व पर पत्थरबाजी की । बस आग फट निकलती हैं ये लोग पंडित - पुरोहित जैसे धोती - कुर्ता पहनकर और कान पर जनेऊ बाँधकर मुसलमानों के जुलुसों पर मारा - मारी करवा कर दंगे को उक्सा देते हैं । भोली - भाली, सीधी - सादी जनता शांति की उपासक होती है । लेकिन किसी के उक्सा देने से शांति की चाहक जनता बौखला उठती है । और आपस में ही कट मरती है । इनका कोई नुकशान नहीं होता है, नुकशान तो जनता का ही होता है । ये सब न तो पूरे हिन्दू होते हैं और न मुसलमान या सिक्ख, ईसाई । ये हर माने बदलते है । बिलकुल रावण की तरह । मैंने कहा - "पंडितजी जब तक आदमी, आदमी को पहचानता नहीं है, तब तक सब एक जैसे लगते हैं । पहचान होने के बाद भेदभाव शुरु हों जाता हैं । और मेरे ख्याल से यह भेदभाव ज्यादातर ब्राह्मण ही उपजाते हैं ।"[३४] यह भी इन जाति की एक कला हैं । जब बहादुरी की बात आये तो रामचन्द्र बनकर राक्षसों का संहार करना चाहिए और दीनता, कमजोरी या गरीबी की बात आये तो सुदामा बन जाना चाहिए ।

लछिमन को लगा कि हमारे देश की अखण्डता को कमजोर करने में जाति धर्म और साम्प्रदायिक लोगों की जबरजस्त भूमिका रही है । इसके अलावा प्रादेशिक्ता एवं भाषाकीय भेदभाव को लेकर भी तनाव, विशेषसर शहरों में देखे जाते हैं । परदेशियों के बस जाने से आज अमेरिका, लंदन और आस्ट्रेलिया इतने बडे समृद्ध देश बन गये हैं । हिन्दी भाषा तो हर भाषा में ओत-प्रोत हो चुकी है । उधर केवल की पत्नी चिंतित है कि समुद्र

में लड़कियों के सौदागर के घर में ज़ाने का मतलब साँप के मुँह में हाथ डालना । विजय भी रुपा से बनावटी प्रेम करते - करते उसे दिल से चाहने लगा था । चाहने नही, बल्कि वह प्रेम करने का नाटक के माध्यम से गुनहेगार तक पहुँचना चाहता हैं । विजय सोचता था कि बेचारी लड़कियों का गायब होना बंद हो जायेगा । लड़कियाँ निर्भय होकर घूम फिर सकेगी । एक तो ऐसे ही पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों पर अंकुश रहता हैं । सारी मर्यादाएँ स्त्रियों के लिए बनाई गई हैं । सूरज काफी चिंतित था कि जन रंकीय स्वार्थ सेवासंघ को यह पता चलेगा कि होटल में मारा गया युवक अमरसिंह था तो संघवाले हड़ताल शुरु कर देंगे । बीड़ थान्हे का दरोगा चिटणीस ने छान - बीन शुरु कर दी और पता लगा लिया कि अमरसिंह की हत्या विजय ने ही की है । इधर रामअचल ने यह भी शिनाख्त लगा ली थी कि विजय और केवल जासूस किसी रुपा नामक लड़की के साथ विदेशी जलपान में किसी रुपा नामक लड़की के साथ विदेशी जलपान में किसी अनिश्चित दिशा की ओर जा रहे है यह भी बताया गया कि वह विदेशी जलपान कभी पानी के अंदर डूबकर चलता है और कभी पानी के ऊपर चलाया जाता है । उस जलपान का आकार, रुप रंग किसी व्हेल मछली जैसा हैं । उधर धनबल के परिवार वालों को जमीदार लोग परेशान करते हैं तभी लड़ाई झगड़ा में गोली - बारी चलती है और धनबल जमीदार के नाती को मार डालता है और रपट लिखवा देता है कि ये लोग मेरे घर में डाका डालने आये थे टेढें लोगो के साथ टेढीं चाल चलना पड़ता है । सीधी उँगली से घी नहीं निकलता है । वह पुलिसवालों को धमकाता है कि लोग कंठीधारी भगत की तरह चींटी बचाकर चलते हो । अरे जिसने तुम्हारी औरत को गाली, धमकी दी हैं, जाओ उसे तुम निर्वस्त्र करके उसके मुँह में कालिख पोतकर गाँव में घुमा दो, तब समझूँ कि तुम देश और समाज के सच्चे व अच्छे रक्षक हो, जो अपनी पत्नी, माँ अपने पिता, अपनी जमीन की रक्षा नहीं कर सकता, वह राष्ट्र के लिए क्या करेगा ? दूसरी तरफ रुपा के माध्यम से विजय और केवल लड़कियाँ उठाने वाले सरदार के घर पहुँच जाते हैं सरदार और कोई नहीं रुपा का पिता हैं इस लिए रुपा परीक्षा लेने के लिए सरदार का खून करने को विजय को कहती हैं विजय किसी भी कींमत में रुपा के पिता की हत्या करने को तैयार नहीं होता हैं । तब केवल से कहती हैं केवल सरदार की हत्या करने को तैयार हो जाता हैं इसलिए रुपा केवल को बंदी बना लेती हैं ।

केवल महाभारतकालीन, चक्रव्यूह के मैंदाननुमां बड़े कमरे में खड़ा सोचने तथा कि लगता हैं, अब यहाँ पर महारथियों के साथ घमासान युद्ध लड़ना होगा । लेकिन मैं अकेले उन महारथियों का सामना कैसे कर पाऊँगा । जरुर अभिमन्यु की तरह निहत्या होने पर

मारा जाऊँगा । लेकिन बदनाम सिंह को गोली से मारकर उसका वेश धारण कर सरदार तक पहुँचने की कोशिश करता हूँ। बदनाम सिंह को गोली से मारा जानकर सरदार केवल से पूछता हैं कि तुम्हारे पास पिस्तोल कहाँ से आई । तब वह बड़ी सच्चाई से बताता हैं कि पिस्तोल जासूस के पास ही थी उसी से छीनकर उसकी हत्या की । तब रुपा कहती है कि तुम तो लक्ष्मण की तरह वीर लगते हो । इसलिए रुपा केवल को अपने पास रखकर विजय की हत्या करने को कहती है केवल ने विजय से बताया कि रुपा ने आज्ञा दी है कि केवल विजय की हत्या करके लाश को ऑफिस में पहुँचा दे । विजय ने रुपा नामक बिल्ली के गले में घंटी बाँध दी । पर रुपा नाम की बिल्ली इतना फूँककर दबे पंजे रखती हैं कि घंटी ससुरी बजती ही नहीं है । दूसरी तरफ लछिमन के सहपाठी शिक्षक नमन को शौचालय में बंद करने वाली बात विद्यालय में दावानल की तरह कानोंकान पहुँच गई थी, विद्यालय के आचार्य से शिकायत करने पर आचार्य ने लिखित में शिकायत माँगा । तब नमन को शक अरार और सनसी पर ठहरा था, नमन ने एक दिन कहा था कि अरार और सनसी को एक कमरे में चुंबन करते हुए उसने देख लिया था । रंगे - हाथों पकड़े जाने से अरार खफा हो गया था और नमन को एक घूँसा मार दिया था। और धमकी दी थी कि खबरदार यह बात किसी और से बताया तो । लेकिन शौचालय के अंदर जाने से पहले नमन ने डेविड को देखा था और रकाब भी वहीं उपस्थित था। यानी रकाब और डेविड में से कोई एक दोषी हो सकता हैं । और दूसरा गेट खोलने वाला चपरासी । नमन जानता हैं कि समाज में गरीब, पिछडे, सामान्यजन लोग सम्पूर्ण मान - सम्मान और न्याय नहीं पाते हैं । उसी तरह नमन को भी न्याय नहीं मिला ।

लछिमन सोचता है कि जहाँ पुलिस, दरोगा के सगे - संबंधियों की सुरक्षा खतरे में हो, वहाँ सामान्य जन की कौन रक्षा करे । एक अबोध बालक बड़ा होते - होते एकदम बदल जाता है । एक निर्दोष में तमाम अवगुण आ जाते हैं । वास्तव में होना यह चाहिए कि ज्यों - ज्यों बालक बड़ा होता है त्यों - त्यों उसमें ज्ञान, अच्छाई, सद्कर्म, ईमानदारी जैसे अच्छे गुण होने चाहिए । अज्ञेय जी ने सच ही कविता में लिखा हैं कि आदमी, आदमी को विषैला बनाता हैं । जन्म से कोई जहरीला नहीं होता हैं । इधर युक्ति करके केवल बलवीर को मारकर विजय घोषित कर देता हैं मृत बलबीर की वर्दी विजय ने पहन लिया और अपनी वर्दी बलबीर को पहना दिया । विजय मेकअप करके बलबीर जैसा अपना चेहरा तथा रुप बना लिया । रुपा को जब खबर मिलती हैं कि विजय मारा गया तब विजय के वियोग में रुपा पागल हो जाती हैं । विजय ने देखा केवल ने रुपा को गोलियों से घायल कर दिया । विजय और केवल ने स्थिति का निरीक्षण किया कि

रुपा मरी नहीं हैं मात्र घायल होकर गिर पड़ी हैं । विजय ने अटकल लगाया कि नरभक्षी बुड्ढा आसानी से मरेगा नहीं, इसमें जरुर कोई राज हैं, उसकी विशिष्ट शक्ति को जानने के लिए विजय पुनः रुपा का सहारा लेने के लिए उसके कमरे में गया । रुपा ने ही बताया कि बूढा इस्पाती कवच पहने हुए हैं । उस पर गोलियों का प्रभाव नहीं पड़ेगा। दूसरी तरफ चिटनीस आकर रुपा को पहचान लेता हैं कि यह वही रुपा हैं जो राजन होटल में जाती थी और अमरसिंह की हत्या वहीं हुई थी । तभी विजय और केवल दूसरे जलपान से बंद गुप्त कारावास देखकर दंग रह गये । उन्हें कृष्णकालीन नरसासुर नामक राक्षस याद आ गया । जिसने सोलह हजार गोपियों को कैद में रखा था, उस नरसासुर का ही पुर्नजन्म शायद वह नरभक्षी बुड्ढा था । कुछ ही समय में नरभक्षी के अनेक आदमी भयानक युद्ध में गोलियों के शिकार हो गये । और नरभक्षी बुड्ढे को हिरासत में ले लिया गया । तथा लडकियों को छुड़ा लिया गया ।

यादवजी के उपन्यासों का तात्विक विवेचन

सूर्यदीन के उपन्यासो की कथानक संरचना :

कथावस्तु उपन्यास की रीढ़ होती है । उपन्यास में कथावस्तु अनिवार्य रूप से होता है । कहानी की अपेक्षा उपन्यास में विस्तार का स्थान अधिक होता है । उपन्यास के कथानक के लिए सुस्पष्टता एवं संतुलितता अनिवार्य गुण होते है । उपन्यास के कथानक में नाटकीयता के गुण होते हैं ।

रचनाकार अपने जीवन के गहन अनुभवों और दूसरो की तुलना ज्ञान के आधार पर जीवन के समग्र यथार्थ को प्रस्तुत करता है । हमारे सामने मर्मस्पर्शी स्थितियाँ उत्पन्न करता है । व क्रमशः अपने लक्ष्य की और बढ़ता हुआ चरम सीमा तक पहुँचता है । इस सीमा तक पहुँचते हुए रचनाकार को अधिक रोचकता बनाये रखनी पड़ती है । अन्यथा उपन्यास नीरस हो जाती है । सामान्यरूप से रचनाकार अपने आस-पास से जीवन से यथार्थ का टुकड़ा उठाता है । अतः उपन्यास पर युग जीवन भी प्रभाव डालता है । हमारा आज का जीवन जटिल व विश्रृंखलित है, फलतः उपन्यासो के कथानक में जटिलता व विखराव का आना स्वाभाविक है ।

सुप्रसिद्ध अंग्रेजी आलोचक एड्विन म्योर का कहना है कि "कथानक को रोचक होना चाहिए, क्योंकि उपन्यास मनोरंजन का भी प्रधान साधन है । रोचकता के लिए उसमें उत्सुक्ता, कौतूहल और नवीनता का होना आवश्यक है ।"[३५] संक्षेप में कथावस्तु के लिए तीन गुण आवश्यक माने गए हैं । रोचकता, स्वाभाविकता, तथा प्रवाह । छोटी-बड़ी घटनाएँ एक साथ गुंथित होने के कारण-सूर्यदीन के उपन्यासों में कथानक काफी लंबा होता है। घटनाओं में भिन्नता होती है । इन घटनाओं का सुनिश्चित रूढ़ वर्गो में विभाजन किया जा सकता है । इन्हें ऐतिहासिक पौराणिक घटनाप्रधान कथानक, सामाजिक, घटनाप्रधान कथानक, आंचलिक घटनाप्रधान कथानक, राजनैतिक घटनाप्रधान कथानक आदि परम्परागत वर्गो में बाँटा जा सकता है ।

'दूसरा आँचल' उपन्यास में उपन्यासकार ने देवर की मानसिकता का वर्णन किया है । भाभी की ममता देवर को वात्सल्यरस से सिंचित करती है । रूप लावण्य होते हुए भी गरिमा झलकती है । देवर को वही तड़प पीड़ित करती है जो माँ से बिछ्ड़ने का एक पुत्र को होता है । माँ के बाद भाभी का आँचल दूसरा आँचल होता है यादवजी ने दूसरे आँचल के रूप में अहमदाबाद की खोली और चाली का भी वास्तविक रेखाचित्र खींचा है । जो कभी खोली में न गया हो उसे भी नीम के पेड़ की हवा लगने लगे।

आर्थिक अभाव में संघर्ष करते मध्यमवर्गीय मानव मन की आंकाक्षायें, अनुभूतियों एवं विशिष्ट कार्य कलापों से उपन्यास न्यास न बनकर आम जनता और उनका अपना पहला आँचल (गाँव) छोड़कर आये परदेशी अर्थो-उपार्जन की यातना कैसे सहते हैं उसका कच्चा दस्तावेज है 'दूसरा आँचल' ।

'दूसरा आँचल' उपन्यास मानवजीवन का दर्पण है जो उससे जीवन की असली झाँखी प्रस्तुत करता है, विविध आयामों से गुजरता हुआ इन्सान सुख या धन की लालसा में भटकता, श्रम करता है पर उसे समाज से कोई प्रेरणात्मक श्रोत नहीं मिलता । समाज की स्वार्थपरता, क्षुद्रता एवं संकुचितता, रूढ़िवादिता से परिवार के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं । बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भी लाचारीवश इंसान सोलहवीं सदी की परम्परा या मानस स्वभाव बदलने में निष्फल रहा है ।

सामान्यत: लोग गहराई में उतरते ही नही । बार-बार एक ही बात कहने को मन विवश हो जाता है कि सूर्यदीन यादव मानव, मन, मानव वेदना, मनोभावों की अभिव्यक्ति के अति कुशल चितेरे हैं । उनका कथानक मुख्य पात्र के साथ-साथ अवलोकन से समृद्ध होता हुआ अनायास आगे बढ़ता है । उनके लिए समाज ही कुटुम्ब है । उसी कौटुम्बिक भावना, ममता स्नेह चिन्तन से वे अपने छोटे-छोटे पात्रों के सहारे कथा को आगे बढ़ाते हैं।

'माँ का आँचल' गाँव की किसानों का सच्चा चिट्ठा खोलने वाला एक यथार्थवादी आँचलिक उपन्यास है । इसकी कथा आम आदमी के मन, घर, गाँव-गली या कल्पना से नहीं मनुष्य के कर्म से शुरु होती है । चैत लगते ही खेतों में कटिया शुरू हो जाती है । मुँह अँधेरे ही सपरिवार स्त्री बच्चे सभी खेत में कटाई करने पहुँच जाते हैं । "खेत परिवेश के इतने मर्मस्पर्शी चित्रण है कि पढ़ते-पढ़ते पाठक भी हँसिया पकड़कर फसल काटने लगे ।"[३६] विचारे निर्धन किसानो की कर्मठ जिंदगी खेतो की माटी से सोने जैसा अनाज पैदा कर रही है । हमारे ग्राम्य आँचल में जब हम विचरण करते हैं तो ऐसा लगता है ग्राम्यवासियों को अपने अभावों का ज्ञान होते हुए भी संतोष का गर्व है, जो उनके जीवन को उस ग्राम्य धरती की मिट्टी से जकड़े हुए है । वे किसी भी हालत में जन्मभूमि 'माँ का आँचल' छोड़ना नहीं चाहते । खेतों और माटी से उन्हें बेहद लगाव है ।

चेतनावादी यात्रा फगुनी अपनी वीरता पूर्वक कामुक पुरुषों से दाँव-पेंच से लड़ती। नारी में जब तक ऐसे नराधमों से मुकाबला करने की शक्ति नहीं पैदा होगी वे सदैव हवस का शिकार होती रहेगी । पूरे उपन्यास में जगह-जगह पर नारी-पीड़ा शोषण के साथ-साथ नारी चेतना, नारी विद्रोह, रूद्र रूप एवं नारी शक्ति का परिचय मिलता है । नारी

चेतना प्रसार पा चुकी है परन्तु उसे सबल बनाने में समाज में किसी न किसी रूप में पुरुष का झूठा अह्म आड़े आ रहा है । अतः 'माँ का आँचल' की डोर इतनी मजबूत है कि जितनी प्रशंसा की जाय कम है ।

'ममता' उपन्यास का कथ्य जीवन के गहन अनुभवों के उपजी घटनाओं का चित्रण है । ''सुलह, शांति, ममता, तनाव-संघर्ष-प्रेमभाव सब कुछ मिलकर ही तो जीवन कहलाता है । दीवार, ईंट, गारा, धन, वंडेर, कमर बस्ता-तरक और छाजन से बनकर घर-घर कहलाता है । उसी घर में ममता का बास होता है.''[३७] ममता गाँव परिवेश की कथा है । ममता को नई बहुयें माई बड़ी अम्मा कहकर बुलाती थी । माई अपनी कोठरी में हमेशां ताला बंद किये रहती । ताले की चाभी वे अपनी गटई में लटकाये रहती थी ।

यादवजी की बड़की माई (दादी) यानी ममता हमारे समग्र देश में प्रत्येक परिवार में पायी जानेवाली, वात्सल्य सागर ममता रहती है । कहीं-कहीं ममता कृपण एवं पक्षपाती भी दिखती है किन्तु इस उपन्यास की नायिका ममता अपने 'यथानाम' तथा गुण के अनुसार ममत्व से परिपूर्ण है । परिवार में सभी को वात्सल्यार्पण करती है । कथ्य रूप में कन्या विवाह, बाल-विवाह, बेमेल-विवाह, बाल विधवा की समस्या से गूंथा हुआ कथ्य पाठकों को जगड़े ही नहीं रखता बल्कि विचार के लिए भी विवश करता है । यादव जी इन समस्याओं को उठाकर इन कुप्रथाओं पर पूर्ण-विराम लाना चाहते हैं ।

ममता सिद्ध करती है कि कोई साथ न दे तो अकेले चलो । बाद में साथ देनेवाले बहुत मिल जायेगें । ममता का चरित्र असुंदर से सुंदर की ओर कटु से मिठास की ओर, और भूल से सुधार की ओर, असंभव से संभव की ओर पाठको को चलने की प्रेरणा देता है । मानवीय भावनाओं में कोमल भावनायें उत्कृष्ट मानी गई है । इन भावनाओं को यादवजी ने ममता द्वारा उत्कृष्टता प्रदान की है ।

पुर्नविवाह को सम्मान दिलाने, मान्यता दिलाने के लिए ममता जीवन भर संघर्ष करती रही । कलासी की नादानी की उम्र में शादी और गौने के बाद ससुराल में जुल्म वासना भरी नियत पुरुषों की, उसे चैन से जीने नहीं देती । पति कायर, दब्बू, अपनी पत्नी की सुरक्षा में असमर्थ । ऐसे पुरुष को पति मानकर कितने दिन इज्जत बचाई जा सकती । अंत में पति की प्रेरणा से ही उसने घर से भाग जाने का साहस किया । इसके पहले वह अपने पिता को पत्र लिखकर अपनी दयनीय परिस्थिति से परिचित करा चुकी थी । कोर्ट में मुकदमे के समय यही पत्र और पत्र लेखक तुलसीराम जैसे न्यायप्रिय, निष्ठावान, जानकी बाजी लगाकर गवाही देने का साहस वाकई काबिले तारीफ है । यह एक ऐसा

पात्र है जो आज के चंद रूपयों में बिकनेवाले गवाहों को प्रकाश स्तम्भ बनकर प्रेरणा देता है । यादवजी इस पात्र द्वारा नवजवानों को निष्ठावान सत्यप्रिय बनने का भी आह्वान करते हैं ।

'अँधेरा जहाँ उजाला' उपन्यास की शुरुआत दिवाकर और रामजीत के जीवन और ग्राम्यांचल के परिप्रेक्ष्य से अंधकार दूर करने के प्रयास से होती है । यह उपन्यास पूरे गाँव, समाज, देश से अंधकार भगाने के लिए स्वयं के जीवन को तराशकर, संवादकर समाज के सामने प्रस्तुत करने का एक उत्तम साहसिक प्रयास है । गाँव से भागनेवाले युवक शहर में आकर गाँव की उपेक्षा करते हैं । अपनी धूल माटी से जो प्रेम करने लगे तो गाँव की प्रगति देश का उजाला बनकर छा जाये । आजादी के बाद गाँव के लोग शहर से जुड़े हैं । दिवाकर दादा के पास अहमदाबाद में रहकर अपना काम निष्ठा से करने की जो तालीम पाता हैं वही तालीम उसे जीवन के प्रत्येक कार्य को निष्ठापूर्वक करने की प्रेरणा देता हैं । उत्तमता की खोज के लिए यह महत्वपूर्ण सोपान है । लेखक को पूर्वजों से निष्ठावान बनने की तालीम मिली है ।

सूर्यदीनजी ने इस कथा द्वारा सिद्ध कर दिया है कि वे एक उत्तम उपन्यासकार के साथ ही मानव मन की सूक्ष्म संवेदनाओं को प्रकट करने की भी कुशलता, प्रतिभा रखते है । भावनाओं की अभिव्यक्ति की अद्‌भुत क्षमता के साथ मनोवैज्ञानिक-अभिगम भी रखते हैं । श्रम की महत्ता और श्रम का आदर न करने से ग्रामीण कला लुप्त होकर शहर में व्यापारीकरण में बदल गई है । इसका नतीजा यह हुआ कि नवजवान कर्महीन, गुणविहीन, हुनरविहीन, होकर बेरोजगारी के चंगुल में फँस कर लोग अविचारी, अनुचित, कुत्सित विचारों के शिकार होते जा रहे हैं । निज प्रिय कर्म छोड़कर दूसरो के कार्यो के प्रति लालायित रहते हैं । यथा रामजीत कहता है-''क्या करुँ... नसीब ही खराब है नहीं तो...।''[३८] सूर्यदीन यादव भारतीय संस्कृति के मूल तक पहुँचकर भारतीय वैवाहिक रिवाजों की परम्परा का हेतु समझाते हुए रामजीत की क्रांतिकारी दृढ़ भावना के बावजूद विनम्रता एवं बौद्धिकता से उसकी बेटी के विवाह पर सभी सगुन पूरे कराते हैं । अँधेरे से उजाले की ओर आने की कोशिश प्रकृति का नियम है ।

सच्चे प्रेम के सामने सांसारिक कोई कारण कारगर साबित नहीं होता । यादवजी ने मानव मूल्यों का गहराई से मूल्यांकन किया है । साथ ही जीवन जीने की सम्भावनाओं को व्यक्ति के मानवीय गुणो को भी गौरव प्रदान किया है । मन तो यही कहता है कि यदि इंसान अपने अंतर्मन में झाँककर देखे तो मालूम होगा कि किसी का मन उजरा नहीं है । अपना मन ही जब कोरा साफ न हो-तो वहाँ, पूर्वग्रह, घृणा, तिरस्कार, उपेक्षा, छोटे-

बडे, गँवार–शहरी के भेद का अँधेरा गहरी जड़ जमाएगा ही, उन्हें उखाड़ फेंकने का प्रयत्न करें तो उजाला अपने आप आकर तमाम प्रश्नों को हल कर देगा । प्रस्तुत उपन्यास मानव की उच्च भावनाओं, लक्ष्यों एवं परिवर्तन की आकांक्षा को उजाले में लाने का सफल प्रयास है ।

'चौराहे के लोग' उपन्यास में डॉ. सूर्यदीन यादव स्वयं उपन्यास के ग्रामीण सूत्रधार के रूप में प्रस्थान करते हैं । वे कहते है कि "भारत देश गाँवो का देश है ।"[३९] इसे सार्थक करते समय भी एक अनिवर्चनीय पीड़ा उन्हें सताती रहती है । वे कहीं दिल के गवाक्ष से झाँककर कहते हैं कि यदि आजादी के बाद गाँव का सही रूप में विकास किया गया होता और शिक्षा की व्यवस्था होती तो शहर के चौराहे और वहाँ कोने में खड़े अनपढ़ ग्राम्य मज़दूर अपना तन, श्रम, समय, शक्ति को बेचने खड़े न होते ? वे कहीं गाँव में ही खेत–खलिहान को स्वर्ग बनाते और सुखमय जीवन जीते होते । और यहाँ दीन–हीनबनकर ठेकेदारों की बोली पर, उनके इशारों पर आठ घंटे की दासता स्वीकार न करते । ऐसे दृश्य आज भी समग्र देश के चौराहों पर देखने को मिलते हैं ।

'चौराहे के लोग' उपन्यास की प्रस्तावना में यादवजी स्वयं कहते हैं कि "चौराहा किसी एक गाँव शहर का नहीं, बहुआयामी, बहुभाषीय, भिन्न संस्कृतियों एवं परिवेशो का मिला–जुला भारतीय मानचित्र है । वह अनायास ही चित्रित हो उठा है । असंख्य अनजाने लोग लक्ष्य तक पहुँचने के लिए काम की तलाश में अपने ले जाने वालों का इन्तजार करते हैं ।"[४०] वास्तव में यह उपन्यास मनोरंजन या साहित्यिक शब्द विलास से बहुत अलग किस्म की रचना है ।

'प्रेमस्रोत' उपन्यास में नैतिकता, आदर्श मूल्यों एवं मानव मूल्यो की रक्षा, सतर्कतापूर्वक करता है । 'प्रेमस्रोत' अभावग्रस्त युवावर्ग के जीवन का जीवंत उदाहरण है । शहर चाहे कानपुर हो या अहमदाबाद श्रमिक वर्ग का शोषण एक समान पाया जाता है । कानपुर जैसे महानगर में मील कामदारों से साक्षात्कार यादव जी नहीं कर पाये । कानपुर की भूसाटोली, बतासा, मण्डी, रेल्वे स्टेशन के नजदीक का समग्र विस्तार भैंसागाड़ी, बैलगाड़ी, पैडल रिक्शा, ठेलेवालों के करुण जीवन का जितना वर्णन किया जाये कम है ।

'प्रेमश्रोत' उपन्यास का अन्तिम प्रकरण ही पूरे कथानक का सार है । जो एक उजला पक्ष है । शीला और श्यामू यानी विधवा और विधुर । दोनो बाल्यकाल से एक दूसरे के प्रति आकर्षित थे । कुछ अंश में प्रेम करते थे । उनका प्रेम कही स्पष्ट रूप लेकर त्वरित बाहर आने के प्रयास में न था । किन्तु परिस्थिति वश दोनों पुनर्लग्न करने

का दृढ़ संकल्प कर मन को एवं विधुर जीवन को सम्मान पूर्वक जीवन साथी पाने का मार्ग प्रशस्त किया । विधवा नारी के शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, पतन के, नारी शोषण से कथाकर पुनर्लग्न कराकर सम्मान देना प्रशंसनीय है ।

'जमीन' उपन्यास में ग्राम्य समस्याओं का निराकरण सरलता से हुआ है या नहीं पर जो जैसा भी है वह स्वीकार्य है । यह एक चिन्तनीय प्रश्न है कि वही प्रश्न को जमीन में उठाये गये हैं शहरी वातावरण में नितांत असम्भव प्रतीत होते हैं । यहाँ गाँव और शहरी परिवेश का अन्तराल दिखाई पड़ता है ।

'जमीन' उपन्यास इक्कीसवीं सदी में भी अपने ग्राम्य जमीन की फलद्रूपता एवं विविधता का प्रतिनिधित्व करता है । 'जमीन' रचनात्मक ऊर्जा से संलग्न एक उत्तम रचना है । जिसने पाँव जमीन में धँसे है । जमीन एक दिशा दिखाती है । समभाव, विश्व व्यापकता एवं विभिन्नता में भी एकता के दर्शन होते हैं । शहर की संस्कृति कृत्रिम बनती जा रही है, फिर भी किसी न किसी रूप में जमीन से जुड़ी हुई है ।

सूर्यदीन यादव के जीवन की जड़े गाँव और आँचलिक परिवेश के साथ प्रबल रूप से जुड़ी है । कहीं-कहीं पर परिवेश के साथ वहाँ की समस्यायें जनजीवन, उनके संकट, उनके खेत-जमीन और मानव-संबंध, सब एक दूसरे के साथ श्रृंखला की कड़ियों की तरह जुड़े हुए हैं । यादवजी अपने उपन्यासों में आत्मानुभूति और बोध गम्य कठिनाइयों का निराकरण भी सरलता से करते हैं ।

जमीन उपन्यास का कथ्य सरल हैं । कथा वनराजसिंह और दीपाली के आसपास ही घूमती हैं । दोनों के संबंध शंका-कुशंका का जाल इतना विस्तृत फैलता है कि वह शीत के जीवन को बर्बाद करने का कारण बनता है । शंका दृढ़ होती है जब वनराजसिंह गाँव जाकर दीपाली को पत्र लिखते हैं ''प्रिय दिपाली प्रसन्न होगी । शीत की शादी सात दिन बाद हो जायेगी । अब तुम निश्चित रहो । अब हमारे बीच का काँटा निकल जायेगा।''[४१]

'चौराहे के लोग' उपन्यास का भावेश का कथन परम सत्य है ''जीवन का बोझ आदमी ढ़ोता है और आदमी का बोझ रिक्शेवाला ढ़ोता है । इतना बड़ा बोझ ओटो रिक्शा नहीं ढो पाते ।''[४२]

'ममता' उपन्यास में पारिवारिक समस्याएँ नित्य उभरकर आती है और ममता की कुशाग्र बुद्धि समीकरण करते-करते थकती नहीं । कभी जमीन घर के बँटवारे की बात तो कभी कोई विधवा स्त्री अपने किसी सगे की पत्नी बनकर नात को भात खिलाकर कलंक से बचती है । यह भी एक समाज है । अब ऐसा नहीं होता होगा । 'प्रेमश्रोत'

उपन्यास में घटनाएँ स्वाभाविक रूप से घटित होकर कथानक को आगे बढ़ाती हैं । सब सर्वसाधारण एक छोटी नहर-सी थोड़ा-थोड़ा जल सिंचन करती नगर के इस छोर से दूसरे छोर तक कथा प्रवाहित हो जाती है । गाँव से शहर तक पहुँच जाती हैं, पर प्रेमाकर्षण है । पर शीला और श्याम संयम-विवेक में सिमिट जाते हैं ।

'एक सफर के मुसाफिर' उपन्यास की कथा तीन परिवेशो में घूमती है । उत्तरप्रदेश, गुजरात, महराष्ट्र के बम्बई जैसे शहर में कुछ लोग चंद रुपये कमाने के उद्देश्य से लड़कियों का अपहरण करवाकर विदेश भेज कर रुपये कमाते हैं तो लेखक को सीताहरण की घटना याद आती है कि रावण जैसे पात्र सतयुग में ही नहीं इस कलियुग में भी होते हैं रुपा का पिता इस कलयुग का रावण है । लड़कियों का अपहरण करवाता है । तो खुफिया पुलिस विभाग के विनय और केवल हनुमान के रूप में अवतरित होकर उनकी मुक्ति करवाते हैं ।

कथानक में पर्याप्त उतार-चढ़ाव है । यह उतार-चढ़ाव कथा को औत्सुक्य एवं रोचक ही नहीं बनाती अपितु कथा के उद्देश्य को भी परिणाम देती है । प्रासंगिक कथा की अपेक्षा अधिकारिक कथा को ही प्रमुखता दी गयी है । जहाँ एक ओर कथा को शीघ्रपूर्ण करने की ललक एवं आवेग के कारण अनावश्यक घटनाओं का समावेश नहीं किया गया, वहीं दूसरी ओर परिवेश एवं वातावरण की सृष्टि में उपन्यासकार इतना अधिक रम गया है कि उसे न्यूनाधिक सीमा का ध्यान ही न रहा । इसे न्यूनता मानकर अधिकाधिक आरोप नहीं लगाया जा सकता । जमीन, आसमान, राष्ट्र और विश्व कुरुक्षेत्र है । महाभारत और राम-रावण युद्ध आज भी हर जगह होते हैं । अनेक सीताएँ, द्रौपदियाँ, अहिल्याएँ, लक्ष्मी बाइयाँ एवं निर्दोष नारियाँ आरोपित ताड़ित-प्रताड़ित एवं शोषित की जाती हैं । इस तरह भूत वर्तमान की व्यथा भी इसमें जुड़ती हैं ।

'एक सफर के मुसाफिर' उपन्यास का कथानक ढ़ाँचा तीन राज्यो के भौगोलिक ढ़ाँचे पर खड़ा किया गया है । इसलिए तीनों प्रदेश की भौगोलिक स्थिति को उपन्यास में रेखांकित किया गया है । भौंगोलिक परिवेश उपन्यास की कथा को गति प्रदान करता है । क्योंकि भौगोलिक परिवेश ही उस प्रदेश या अंचल के सामाजिक एवम् सांस्कृतिक संबंधो एवम् मूल्यों को निर्धारित करता है । लछिमन नामक एक नवयुवक के द्वारा पूरी कथा कहलवाई गई है, हालांकि लछिमन कभी प्रत्यक्ष रूप से तो कभी परोक्ष रूप से कथानक का एक हिस्सा ही बनकर आया है, अत: हम उसे एक 'सूत्रधार' की परिधि में रख सकते हैं । लछिमन इस उपन्यास का एक सीधा-सादा ग्रामीण शिक्षित युवक है।

कभी उत्तरप्रदेश, कभी महाराष्ट्र और कभी गुजरात की भूमि को अपना कर्मक्षेत्र बनाता है, कथानक के महत्वपूर्ण कथांशो का वह प्रत्यक्ष रूप से भोक्ता न होकर भी, कभी लगा ही नहीं कि वह क्षणिक भी पाठक की नजरों के दूर आ गया हो ।

सूर्यदीन यादवजी के उपन्यास के पात्र व चरित्र-चित्रण :

किसी भी कथानक के आधारशिला उसके पात्र होते हैं । अतः पात्र व चरित्र-चित्रण उपन्यास कला में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । एक सफल उपन्यास के लिए पात्र वास्तविक व सजीव होने चाहिए । पात्रों की संख्या उतने ही होने चाहिए कि जिससे कथानक की आवश्यकताएँ व लेखक का उद्देश्य पूर्ण हो सके । आज के युग में उपन्यास के पात्र हमारे आस-पास के परिवेश से ही लिए जाते है ।

उपन्यास में पात्रों का चरित्र-चित्रण सजीवता, सत्यता और स्वाभाविकता के साथ अत्यंत प्रभावशाली ढ़ंग से होना चाहिए । पात्र की प्रकृति के अनुरूप ही उसके कार्य और बातें होना आवश्यक है । पात्रों की चरित्रगत विभिन्नताएँ कथावस्तु के उचित विकास में सहायक होती है । आज वही उपन्यास श्रेष्ठ समझे जाते है, जिनके पात्रों मे यथार्थ के आधार पर भावी व्यावहारिक आदर्श का चित्रण किया जाता है, अथवा जीवन की यथार्थ स्थिति का संवेदनशील, प्रभावपूर्ण अंकन होता है ।

कथाकार सूर्यदीन यादव के उपन्यासों का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके उपन्यासों में गतिशील एवं कर्मठ ग्रामीण पात्रों की संख्या अधिक है । उनके उपन्यासों के कुछ पात्र नितांत व्यक्ति प्रधान हैं और कुछ वर्गगत हैं । कुछ ऐसे भी पात्र है जो स्वतंत्र व्यक्तित्व के वाहक, होते हुए भी एक वर्ग विशेष का प्रतिनिधि करने लगते हैं । अतः उन्हें भी वर्गगत श्रेणी में ही रखा जा सकता है । उदाहरण के रूप में 'ममता', 'माँ का आँचल', 'जमीन' 'चौराहे के लोग', 'प्रेमश्रोत', 'अँधेरा जहाँ उजाला' आदि उपन्यासो के पात्र व्यक्तित्व प्रधान पात्र है । क्योंकि इनका निजी व्यक्तित्व उपन्यास में प्रस्फुटित होता है । किन्तु समग्र समाज का प्रतिनिधित्व करते है । वर्गगत पात्रों में प्रेमश्रोत का अमित 'जमीन' उपन्यास का वनराजसिंह पात्र लिये जा सकते है । ये पात्र वर्गगत माने जायेंगे क्योंकि वे किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

यहाँ सूर्यदीन यादव के पात्र निर्माण की विशेषताएँ भी उल्लेखनीय हैं । उनके पात्र निर्माण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे किसी कल्पना लोक के निवासी नहीं किन्तु वास्तविक अनुभवों के संसार के पात्र हैं । दूसरे शब्दों में कहें तो उनके पात्रों में

हमें अपना ही प्रतिबिंब दिखाई देता हैं क्योंकि वे अपने परिवेश से संयुक्त हैं । उनके पात्र साधारण मानव ही लगते है जिनमें न तो आदर्शो की डींगे हैं न अति आर्थिकता का भ्रम जाल । उनके पात्र तथा कथित बौद्धिकता के भार से दबे हुए नहीं है । किन्तु 'ममता' उपन्यास की ममता भावना के संसार में जीने वाले पात्र हैं । सूर्यदीन यादव के अधिकांश पात्र परिस्थितियों से जन्म लेने वाली कुण्ठाओं और ग्रंथियो के शिकार हैं । उनमें सम्बंधो के बनने का उल्लास भी है और संबंधो के इटने की पीड़ा भी है । 'ममता' उपन्यास का जसबीर जैसे पात्र परिस्थितियों को अनुकूल न कर पाने से मनोग्रंथियो की विकृति का शिकार बने हैं । किन्तु सूर्यदीन यादव जी की विशेषता यह है कि इस प्रकार की विकृतियों का निरुपण साहित्यिक सुरूचि का भंग नहीं करता, एक शिष्टता सर्वत्र दिखाई देती है । फलतः उनके पात्रों के प्रति धृणा नहीं सहानुभूति ही होती हैं ।

सूर्यदीन के अधिकांश उपन्यासों के पात्र निम्नवर्गीय हैं । जो शोषण से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप से जीनेवाले हैं । पर वे स्वतंत्र सुखी तभी हो सकते हैं जब उनमें आर्थिक रूप से स्वावलंबी होने तथा शिक्षित होने की भावना हो ।

'दूसरा आँचल' उपन्यास के पात्र विविध आयामों से गुजरते हुए भी अतृप्त मन के बावजूद अपनी परिस्थितियो में सुख शांति का अनुभव करते हैं । इसके साथ-साथ नारी शोषण की बात भी इनके उपन्यासो में उभर कर आई है । आज की नारी के लिए यह अनिवार्य नहीं है कि वह पुरानी रूढ़ियों का आँख मूँद कर पालन करती जाय । आज की नारी धार्मिकता के नाम पर बलिदान नहीं चढ़ाती । 'माँ का आँचल' उपन्यास की फगुनी एक जबरदस्त तेजवंती नारी पात्र हैं । वह कई मौको पर अपनी छुपी हुई नारी शक्ति, आत्म सम्मान एवं नारी में दुर्गा दिखाने का प्रयत्न करती है । राजकरण फगुनी को अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है, तब फगुनी कहती है-''मरद होकर चला है औरत से लड़ने चला जा नहीं तो अबकी ऐसा लात मारूँगी कि तेरी मरदई खतम हो जायेगी । साला साड़ी खोलेगा । अरे साड़ी उतारकर रख दूँ तो भी तू मेरे जिस्म का कुछ नहीं बिगाड़ सकता । मेरे अंदरकी औरत जाग चुकी है ।''[४३]

सामान्यतः लोग गहराई में उतरते ही नहीं । बार-बार एक ही बात कहने को विवश हो जाता है कि सूर्यदीन यादव मानव मन, मानव वेदना, मनोभावों की अभिव्यक्ति के कुशल चितेरे हैं । उनका कथानक मुख्य पात्र के साथ-साथ सूक्ष्म अवलोकन से समृद्ध होता हुआ अनायास आगे बढ़ता है । उनके लिए समाज ही कुटुंब है । उसी कौटुम्बिक भावना, ममता, स्नेह चिन्तन के वे अपने छोटे-छोटे पात्रों के सहारे कथा को आगे बढ़ाते हैं।

'दूसरा आँचल' उपन्यास की पंकू और लीकी का प्रेम प्रकरण भी संकीर्णता की दीवार में जकड़ी एक सामाजिक समस्या है । अमित और मंदा के बीच प्रेम अंकुर फूटते हैं । अमित पुस्तकीय ज्ञान और आदर्श की बातें करके अपनी उच्च भावना में सफल पात्र हुआ है । अमित बहुत साहसी और व्यवहार कुशल युवक है । किन्तु प्रियतमा के प्रति चिंतित हैं । वह शीघ्र-अतिशीघ्र अच्छी नौकरी, अच्छी आवक, अच्छी प्रतिष्ठा मानमर्यादा सम्मान के लिए भूख और हर प्रकार के त्याग को स्वीकार करता है । वह लक्ष्य साधक है और गाँव से जुड़े रहने की भावना उसे आदर का पात्र बनाती है ।

पाण्ड़ेजी और अमित के बीच जो आस्तिक-नास्तिक की चर्चा छिड़ती है वह भी आज के समाज का यथार्थ है । कथा कीर्तन में जाना । माथे तिलक करना, गले में रुद्राक्ष की माला पीताम्बर ओढ़ना, बार-बार राम-राम बोलना । दूसरो को मूर्ख बनाकर आड़म्बर के कारण दंभ को पुष्टि देनेवाले लोग यह तरीका अपनाते हैं । हमारे समाज में गेरुआ वस्त्र रुद्राक्ष की माला धारण कर लोग आदर सम्मान के पात्र बन जाते है । वास्तविकता कथनी - करनी की एकता, मानवतापूर्ण व्यवहार ही तो हमें आदर का पात्र बनाता है। पर पांड़े जी कहते है कि ''बच्चो के साथ साला कंटाला आता है ।''[४४]

'माँ का आँचल' उपन्यास में चैतू कहता हे कि ''फगुनी अपने घाव पर पट्टी बांधकर तेरा घाव भर दूँ ।''[४५] यह पात्रों की आत्मा की आवाजें हैं, जो जीवंत लगती हैं । एकदम पवित्र निश्च्छल प्रेमलाप यहाँ मन को छू जाता हैं । बसावन फगुनी पर बलात्कार करने के लिए पशु समान हमला करने जाता है, वह शेरनी की तरह अपनी बहादुरी का परिचय देती है और बसावन के दाँत खट्टे कर देती है । वह दृश्य वास्तव में कितना द्रावक हैं और पुरुष की नराधम पराकाष्ठा भी देखने समझने लायक है । 'माँ का आँचल' की डोर इतनी मजबूत है कि जितनी प्रशंसा की जाय कम है, सच्चे प्रेमी चमार जाति की फगुनी ने न जाने कितने ब्राह्मणो, ठाकुरो, जमीदारो एवं कामुक पुरुषो को चमार बनने नहीं दिया। यह भी नारी चेतना की विशेषता ही है ।

'ममता' उपन्यास की कलासी जैसी सताई गई और सताई जा रही, अपनी सुरक्षा की भीख मांगती न्यायालय के दरवाजे खटखटाती, शोषित, पीड़ित, त्रसित नारियों के लिए हम क्या कर सकते हैं । यदि कुछ नहीं कर पाते हैं.... तब ममता जैसी तेज तर्रार नारियों को अपना उत्तरदायित्व निभाना ही पड़ेगा । ममता कहती है कि बेड़ियों को तोड़ने की शक्ति सामर्थ्य भी औरत में है । वह कोशिश करे तो हर कार्य कर सकती है । यही कोशिश करते-करते मेरी जिंदगी बिती जा रही है । अपनी सफलता अपनी विजय में तुम औरतों में देखना चाहती हूँ । मैं न सही तुम सब तो कुछ करके दिखाओ ।

यादवजी ने ममता द्वारा नारी शक्ति को उजागर करने का भरपूर प्रयत्न किया है। यदि नारी ठान ले तो किसी से कम सिद्धिया क्या नहीं पा सकती है । जसवीर ने जब बताया कि कलासी और उसका नया पति गोरकऊ पुलिस हिरासत में हैं और कलासी के ससुराल वाले उसे पुनः प्राप्त करने का षड़यंत्र रच रहे हैं तो ममता नागिन की भाँति फूफकार उठती है । ममता में सर्वत्र आशावादी चिंतन परिलक्षित होता है । वह दीपक के सदृश जलते रहकर परिवार के सदस्यों को प्रकाश देकर अँधेरे से बचने का संकल्प भी करती है । ममता एक बेनमून नारी है जो अपने परिवार की किसी भी बहू-बेटी पर जो भी दोष लगे अपने पर ओढ़कर उसका तथ्यात्मक परिणाम खोज निकालती है।

कलासी के भागकर दूसरे के घर बैठकर गोरुका से विवाह कर लेने को ममता का दृष्टिकोण देखिये । वह कहती है कि ''अपनी सुरक्षा के लिए कलासी ने दूसरा घर बसाया । उसने किसी का घर उजाड़ा नहीं । एक गरीब का घर बसाना बुराई नहीं । बड़े लोगो के सजे सुशोभित घर में रहकर खुद उजड़ जाने से बेहतर है । एक छान-छप्पर में रहते गरीबी में जी रहे घर को बसाना और सजाना भी नारी का धर्म है ।''[४६] 'अँधेरा जहाँ उजाला' उपन्यास में यादवजी एक कुशल मानव मन भावुकता, संवेदना, उद्वेग, क्रोध, प्रेम, कर्तव्य, स्नेह, त्याग पारिवारिक सम्बन्धो आदि को चित्रित करने में पूर्णरूपेण सफल हुए है । इस उपन्यास में कोई भी पात्र अनावश्यक रूप से प्रवेश नहीं करता । मकड़े के जाले की तरह हर पात्र तार-तार जुड़ता है और कथा बुनता है ।

इस उपन्यास में तमाम पात्र समयानुसार आते-जाते है किन्तु दिवाकर, रामजीत, साधव, सुन्दरी आदि समाज को जीवन्त सुखद एवं मानवीय भावनाओं से सुगन्धित रखने का प्रयास करते है, वे मशाल लेकर वहाँ पहुँच जाते हैं । जहाँ अन्धकार गहन होता है और उसे निर्मूल करने का प्रयत्न करते हैं । जबकि दूसरी तरफ स्वार्थी लोग अज्ञानता, दंभ, रूढ़िवादी, जुल्म-परम्परा को बनाये रखते हैं । समाज के ये स्वार्थी लोग उजाले के श्रोत यानी दीप ही को प्रगट नहीं करने देते । यह समस्या मात्र उनके गाँव की नहीं, हमारा पूरा देश इसी तरह उलझा फँसा एवं दर्दभरी अज्ञानता से ग्रसित है ।

यह रामजीत की फंसन है या हमारे समाज के प्रत्येक संवेदनशील युवक की फंसन है । रामजीत इस उपन्यास का उत्तम पात्र होने के कारण हमारे समग्र मानव समाज का प्रतिनिधित्व करता है । उसका चरित्र हमारे समाज के पढ़े-लिखे बेकार, बाप का माल खाने वाले आलसी कायर नवयुवकों को-टार्च लाइट दिखाता है । उठो दृढ़ प्रतिज्ञ हो कुछ भी समाजोपयोगी कार्य निःस्वार्थ भाव से शुरु करो । एक दिन सफलता की देवी तुम्हारा स्वागत करेगी । और यह सच भी है कि दृढ़ निश्चय एवं सच्ची निष्ठा के काम करने से विजय मिलती है ।

मानवीय मूल्यों को तोड़ने वाले बल इस उपन्यास के मुख्य पहलू हैं किन्तु रामजीत जैसे पात्र अनीतियों एवं जालसाजिशों को निष्फल बनाने एवं अँधेरे को भगा उजाला लाने का तनतोड़ श्रम करते है । सर्ज़क साहित्यकार साहित्य रचनाकर्म के समग्र पात्रों का सृष्टा और भाग्य विधाता होता है । किस पात्र को किस कुल, धर्म, परिवार में जन्म देना है। उसके मुख से कैसी भाषा बुलवानी है मानो सरस्वती का प्रतिनिधित्व बन जाता है । दुनियादारी को मूल गूह्य ग्रहों से निरपेक्ष यथार्थ सा सृजन करता है ।

अपने प्रियजन रूठे हो तो उन्हें मनाने में संकोच नहीं करना चाहिए । अनेक संघर्षो के सामने जूझता हुआ सशक्त पात्रों में रामजीत और सुंदरी का अविवाहित काल की मुलाकात का प्रसंग भी अपने आप में एक आदर्श प्रेमी, शुभेच्छु और साहसी पुरुष के रूप में निखरा हैं । रामजीत यथार्थवादी के साथ ही तत्वज्ञानी भी है । पात्रों के कथोपकथन संघर्षो की कड़ी है, चेतना की चिनगारी है । "जीवन संघर्ष है । संघर्ष का ही दूसरा नाम जीवन हैं । संघर्षो से बचने की कोशिश करना बुजदिली एवं कायरता है ।"[४७]

इतना साहस, प्रेरणा, बल देने वाले पात्र रामजीत के चरित्र को लेखक ने Positive Thinking द्वारा बड़े-बड़े चिन्तकों के समकक्ष एवं आदर्श खड़ा कर दिया है । रामजीत इस उपन्यास का एक कर्मठ, कर्तव्यनिष्ठ, क्रांतिकारी, तेजस्वी पात्र है । रामजीत जानता है कि कर्तव्य अपनी मुट्ठी में होता है । कठिन कार्य वह अपने सशक्त हाथों से कर सकता है । फिर वह अपने को बेकार कैसे मान ले ।

यादवजी ने उपन्यास में पाँच-छः ऐसे दृढ मनोबल वाले पात्र चुने हैं कि जो गाँव का अँधेरा दूर करने में प्रकाश पुंज का काम कर गये है । उनमें साधव, सुंदरी, रामजीत, दिवाकर, मूरत जैसे पात्रों ने गाँव में क्रांतिकारी कदम उठाकर गाँव की मानसिकता, परम्परा तोड़ने का साहस पैदा करने में ठोस कदम उठाये हैं ।

'चौराहे के लोग' उपन्यास में मुख्यतः वही पात्र आते हैं जो समय की रोटी पाने के लिए आठ-दस घंटे खून-पसीना बहाते हैं । इतना ही नहीं कितनी जिल्लतभरी जिंदगी उनकी है, यह तो यादवजी जैसे अन्तर्मन के चितेरे ही जानकर उसे भाषा का लिवास पहना सके है ।

एक जगह रिक्शेवाले के मनोभाव भी किस उदारता से आप कहते है, लगता है कि "दूसरों का बोझ हल्का करने वाले लोग बड़ी जल्दी से हमारी कठिनाइयों को समझ लेते है । इन दर्द भांपियों से दर्द छिपाया नहीं जा सकता । इनसे झूठ बोलना बेमानी होगी ।"[४८]

'प्रेमश्रोत' उपन्यास में श्यामू मुख्य पात्र होते हुए भी उसमें कोई नायक के गुण विकसित नहीं हुए हैं । उसका चरित्र विशेष आर्कषित नहीं करता । वह एक संस्कारी मध्यमवर्गीय आर्थिक अभाव में जीनेवाला युवक है, उसमें कोई मौलिक भाव या लक्षण दृष्टिगत नहीं होते । श्यामू नहीं मानो वह लेखक का सहजाकर्षण है, प्रिय पात्र के प्रति। जीवन की कठोर वास्तविकता, यथार्थ का सामना करने, जीवन सहज बनाने के लिए परिस्थितियों के समझौता करने की सहजावृत्ति है । युवावस्था में जीवन दुःखमय न बनाने की प्रेरणा मिलती है । किन्तु निश्छल प्रेमभाव पाठक को बाँधता है । शीला-श्यामू एक दूसरे से प्यार करते है ऐसा महसूस होता है । वे उस अवस्था से गुजरते है, जब किशोर-किशोरी एक दूसरे के प्रति किसी अदा, बात, चाल, हाव-भाव या क्षणिक संबंध बातों से आर्कषित होते हैं ।

'प्रेमश्रोत' उपन्यास का पात्र रामनाथ एक शाम को अपनी मनोवेदना का गुहार तो न दिखा सके पर द्रवित होकर कहने लगे-"बेटा मुझमें दम नहीं पर सबके साथ ठेलिया में हाथ लगाये रहता हूँ । गाँव वाले समझते है परदेश में अच्छा कमाते खाते हैं, लेकिन यहाँ तन-तोड़ मेहनत से रोयें-रोयें थर्रा उठते हैं ।"[४९] जब श्यामू शीला को गँवई एवं डरपोक कहता है तब उत्तर देती है-"जिसें तुम गँवई कहते हो दर-असल वह नारी का संयम और विवेक है ।"[५०]

'जमीन' उपन्यास दरअसल मानव-जीवन के रंगीन क्रियाकलापों का प्रतीक है । प्रत्येक जीव, प्राणी, जन्तु, प्रकृति, पेड़-पौधे, मानव, हवा-जल, सब जमीन के ही अंश है। चाहे अपनी हो या पराई उसे जमीन ही स्वीकार करती है । वह प्राकृतिक स्वीकृति है। 'जमीन' को प्रतीक बनाकर गहन विषय को सरलता से दृष्टान्तों द्वारा निरुपित किया है। यदि यादव जी थोड़ा और चिंतन-मनन कर पात्रों के चरित्र को उत्तमता की ओर ले गये होते तो उपन्यास में एक अद्भुत मौलिक मोड़ आ जाता ।

'माँ का आँचल' उपन्यास के मुख्य दो पात्र चैता और फगुनी मात्र नामकत्व ही नहीं निभाते बल्कि किसानों के लिए दो महीने (चैत फागुन) जो महत्वपूर्ण होते हैं, ये समाज के खूँखार भेड़ियो से टकराते हैं और एक नवीन चेतना का संचार करते है ।

'ममता' उपन्यास में ममता का पति जसबीर का चरित्र ममता, मनचली और कलासी के चरित्र अत्यंत प्रभावोत्पादक बने हैं । ममता स्वंय कहती रही है, अच्छाइयों को सराहती रही है । यहाँ तक की मानो स्वयं मौत से मुँह में फँसी हो उसी प्रकार अदालत में न्याय और शक्ति के लिए चीख-चीखकर कलासी जो उसकी बेटी है उसकी बचाव की दलिले

स्वयं करती है उपरांत शक्ति के लिए तुलसीराम का चरित्र विशेष महत्वपूर्ण बन पाया है तथा कई शैतान भी सफल ढ़ंग से यहाँ चित्रित किए गए हैं ।

'ममता के चरित्र को भली-भाँति चित्रित करते हुए इस उपन्यास में डॉ सूर्यदीन यादव ने समाज और परिवार के बीच सिसकते, कराहते, टीसते, परिवेश की आन्तरिक कथाओं, व्यथाओं, विवशताओं पर अपने सार गर्भित विचार बड़े साफ सुथरे ढ़ंग से प्रस्तुत करते हुए ख्याति अर्जित की है ।

'अँधेरा जहाँ उजाला' उपन्यास में साधव एक ऐसा पात्र है जो, अपने घाटे तथा बहुतों के लाभ के लिए सामूहिक सिद्धान्त को अपने लिए अधिक सुखद मानता है । दिवाकर एक ऐसा पात्र है जो गाँव और शहर दोनों का प्रतिनिधित्व करता है । शहर जाने के बाद भी वह अपने गाँव की स्मृतियों को विस्मृत नहीं कर पाता । उसका आकर्षण यथावत बना रहता है तभी तो वह शहर से लौटकर अपने मित्र रामजीत से जब मिलता है । तो कहता है कि "रामजीत यह गाँव स्वर्ग से अधिक प्यारा है । यहाँ की माटी की सोंधी सुगंध बड़े-बड़े शहरों तक महकती है । गाँव की माटी की शक्ति लेकर ही हम बाहर जाकर बड़े कठिन कार्य करते हैं ।"[५१]

उपन्यासकार इस उपन्यास के माध्यम से बताता है कि किस तरह अब गाँवो से जातिगत भेदभाव, छुआ-छूत, रूपी अँधेरा दूर हो रहा है और साधव, दिवाकर, रामजीत, मूरत, उजरी, धनपती, सुंदरी जैसे पात्र उजाले की किरण बनकर सामने आ रहे हैं । उपयान्स में चरित्र-चित्रण बड़े स्वाभाविक है । इसमें कोई भी पात्र काल्पनिक नहीं है । सब सुल्तानपुरी है । रोमांस के भी वर्णन हैं । बेमेल-विवाह व बेमेल प्रेम भी सफल है । स्त्री सब कुछ कह देती है, पर सीधे नहीं । प्रेम, वासना और परिणाम के विविध दृश्य हैं । गरीबी का प्रभाव सब पर है । चोरी और छिनारे की पंचायतें भरी पड़ी हैं । बिरादरी की पंचायत सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय है जिसमें सबसे अधिक मुकदमें व्याभिचार के प्रस्तुत होते हैं । आंचलिक पात्र-चरित्र हैं । सामन्तवादी गरीब, शोषक, शोषित पढ़े-बे पढ़े, स्त्री-पुरुष, बच्चे, वृद्ध, सरकारी अधिकारी व पुलिस के लोग पात्रं है । सबके चरित्र को विस्तार से दिखाया गया है ।

रामजीत का चरित्र त्रासदी से घिरा हुआ है । संघर्षशील भी है । वह सच्चाई के लिए लड़ने वाला है । धर्मसिंह का चरित्र दमनकारी है । वह रामजीत को नष्ट करके अपना शोषण जारी रखना चाहता है, उसके खेत को भी हड़पना चाहता है । रामजीत, दिवाकर, साधव, सुंदरी जैसे पात्र इसी उजालों के प्रतीक हैं । भैरोसिंह तथा उसके सहयोगी साक्षात अंधेरे के प्रतीक हैं ।

शुकरु, कंजहा, धर्मसिंह जैसे पात्र ईर्ष्या-द्वेष, वैयमनस्य और समाज विरोधी गतिविधियों में लिप्त आभिज्ञात्य मन:स्थितियों से ग्रस्त पात्र हैं । जो समाज में अज्ञानता, पिछड़ापन, रूढ़िवादता को बनाये रखना चाहते हैं । जिससे गाँव-समाज में अपनी धौंस बनी रहे ।

'चौराहे के लोग' उपन्यास का पात्र ग्राम्यांचल से प्रभावित होता हैं । गाँव के लोगों को वह देखता और उनको पहचानने की कोशिश करता है । उसको सब कुछ नया लग रहा है । गाँव के सुंदर चित्र है । संस्मरण....इति वृत्त और वर्णन भी बड़े आकर्षक है। भावेश गाँव में लम्बे समय के बाद आया है, इसलिए बहुत कुछ बदला हुआ लगता है। लोग अपने-अपने पेशे में लगे हैं । घर सुखी नहीं है । कुटीर उद्योग किसी प्रकार से जिन्दा किए हुए हैं । अपने अतीत और वर्तमान दोनों को पात्र स्पष्ट करते हैं ।

लेखक स्वयं भावेश नाम धारणकर उपन्यास का मुख्य सूत्रधार एवं पुष्ट पात्र है। उस पात्र द्वारा आपबीती कहते-कहते बीच में जग बीती भी सुनाने लगते हैं । शहर से छुट्टियों में गाँव आने पर परदेशी कहलाने की मार्मिक पीड़ा अन्तर्गत में छुपी हैं । जिस मिट्टी में बचपन का खेत बीता,, जबानी में वह मिट्टी कैसे छूट सकती है । मिट्टी का लगाव एक छटपटाहट भी प्रदर्शित करता है ।

संक्षेप में हम सह सकते हैं कि जीवन की परिस्थिति के अनुरूप पात्रों की आंतरिक स्थितियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण सूर्यदीन के उपन्यास कला का सर्वाधिक आकर्षण अंग है।

सामान्यत: देखा गया है कि एक वक्त आर्थिक अभाव में जीनेवाला व्यक्ति लक्ष्मी की कृपा होते ही अभिमान में चूर हो जाता है । वह भूल जाता है कि एकदिन वह भी इन अभावों में से गुजरा था । किन्तु 'प्रेमश्रोत' उपन्यास का पात्र श्यामू नौकरी पाने के बाद भी सामान्यजीवन जीता हुआ दिखाई देता है । और यह सहजता ही लेखक को असामान्य बनाती है तभी वह अच्छी रचना करने में कामयाब हो पाता है । तो वही पर वात्सल्यपूर्ण देवी ममता का चरित्र-चित्रण करना उतना ही श्रमसाध्य या असाध्य है जिसे शब्द परिलक्षित नहीं कर सकते हैं जिसे वाणी व्यक्त नहीं कर सकती है, ऐसे मनोभावों को, अव्यक्त चित्रों एवं दृश्यों को उभारना यादवजी की दिव्य विशिष्ट कला है ममता को मन की गहराई तक पहुँचने का आज की स्वकेन्द्रित दंभी नारी का कोई स्थान ही नहीं। ममता नारी-नारायणी के सूत्र को चरितार्थ करती है ।

हर क्लिष्ट परिस्थितियों, घटनाओं, क्रियाओं, को ममता के माध्यम से यादवजी ने मानवीय संबंधो एवं उदात्त भावना के सर्वग्राही व्यापक बनाने का प्रयास किया है । यही

ग्रामीण परिवेश के सहारे जीवंत पात्रों द्वारा लेखक यादवजी की अभिव्यक्ति शक्ति और ग्राम्य भाषा की अभिव्यंजना शक्ति अति प्रबल प्रभावकारी रूप से प्रकट हुई है ।

'ममता उपन्यास में लेखक तुलसीराम जैसे न्यायप्रिय निष्ठावान, जान की बाजी लगाकर, गवाही देने का साहस वाकई काबिले तारीफ हैं । यह एक ऐसा पात्र हैं जो आज के चंद रूपयों में बिकने वाले गवाहों को प्रकाश स्तम्भ बनकर प्रेरणा देता है । यादवजी इस पात्र द्वारा नवजवानो की निष्ठावान सत्यप्रिय बनने का भी आहवान करते हैं ।

उपन्यास में अलग-अलग कहानियाँ हैं और प्रत्येक कहानियों का अपना अलग एक खास तेवर और विशेषता है । सबके अलग-अलग पात्र है । सबकी अपनी विवशता, दर्द, एक विचित्र पीड़ा और अन्र्तद्वन्द्व लिए हुए बिखरी हैं । उनका अपना एक दर्शन है, चाहत है, आकर्षण और विड़म्बना है । कहीं तो छलकतामय प्यार हैं, कह-कहे और टीस है तो कहीं टूटते-जूड़ते भावो, संवेदनाओं और काव्यात्मक भावभूमि की सर्जना भी दिखती है।

पूरे उपन्यास की संवाद योजना अच्छी है । हर पात्र अपने संवाद की सीमा को लाँघता नहीं अपितु उस सीमा में बँधा रहकर ही कुछ करता है । पात्रों का चारित्रिक, विकास रचनाकार ने संवेदना की गहराई में पैठकर किया है । इसीलिए पात्र बाह्य द्वन्द्व की अपेक्षा अन्र्तद्वन्द्व अधिक करते दिखाई देते हैं । भावात्मक स्तर पर वे जहाँ अन्र्तद्वन्द्व करते हैं वहीं सामाजिक पहलुओं में वैचारिक दृष्टि से बाह्य द्वन्द्व करते हुए दृष्टि गोचर होते है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पात्रों के मनाभावो का प्रकाशन हुआ । इस प्रकाशन में चाहे वह दुर्बल पक्ष रहा हो या सबल पक्ष सभी को यथोचित रूप से दर्शाने में उपन्यासकार ने रंचमात्र न्यूनता का प्रदर्शन नहीं किया है । पात्रों के चारित्रिक संघर्ष में रचनाकार के वैयक्तिक संघर्ष की भी झलक मिलती है । संवाद योजना अद्‌भुत है । संवादों की लाक्षणिकता एवं व्यंजकता भावाभिव्यक्ति को उत्कर्षता प्रदान करने में अहं भूमिका का निर्वहन करते हैं । 'जमीन' उपन्यास के पात्र इतने सजीव है कि पढ़ते वक्त अपने समक्ष संवेद्य हो उठते है । रवि मुख्य पात्र होते हुए भी परोक्ष रूप से ही शोधकार्य के सहारे कथानक को (१४४) पृष्ठों तक सरलता से पहुँचाता देता है । जमीन को प्रतीक बनाकर गहन विषय को सरलता से दृष्टांतो द्वारा निरुपित किया गया है । जो भी तत्व या रूप दृश्य है वह जमीन है । 'एक सफर के मुसाफिर' उपन्यास में लेखक की दृष्टि किसी एक पात्र-चरित्र को महत्व न देकर उपन्यास के विषयवस्तु को केन्द्र में रखती हैं । उपन्यास घटना प्रधान होने के कारण इसमें विविध परिस्थितियों में घटित घटनाओं को ही महत्व दिया गया है। उपन्यास के पुरुष पात्रों के रूप में लछिमन, विजय, सूरजसिंह, केवल, धनबल, रामचन्दन, रामसदन, आदि । तो स्त्री पात्रों में रूपा, सुंदरी, उर्मिला आदि पात्र आते हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास में ऐसा कोई भी पात्र सशक्त ढ़ंग से नहीं उभर पाया, जिसको प्रमुख पात्र कहा जा सके । यहाँ हर पात्र नायकत्व करता है । अथवा यूँ कहें कि 'एक सफर के मुसाफिर' में कई पात्र है क्लासिकल पात्र ही है और जो पाठको के मन को प्रभावित करते है । लेखक ने किसी पात्र विशेष को महत्व न देकर अपने उद्देश्य को केन्द्रस्थ रखा है । अत: उपन्यास में चित्रित सभी पात्र अपनी-अपनी विशेषताओं से भरे सजीव और जीवन्त व्यक्तित्व हैं ।

सूर्यदीन यादव के उपन्यासों में कथोपकथन :

कथोपकथन उपन्यास शिल्प का महत्वपूर्ण अंग है । कथोपकथन के माध्यम से कथानक को सूत्र का विकास, चरित्र-चित्रण, अर्न्तद्वन्द्व आदि की अभिव्यक्ति होती है । कथोपकथन, के माध्यम से वातावरण का निर्माण भी होता है । कथोपकथन में अनुकूलता, सरलता, रोचकता, तर्कसंगतता, संक्षिप्तता, पात्रानुरूपता, भावानुरूपता व स्वाभाविकता और सरलता आदि गुण होने चाहिए । पात्रों द्वारा कथोपकथन से रहस्योद्घाटन भी होता है ।

नाटक में इस तत्व का एकाधिकार होता है, पर उपन्यास में आवश्यकतानुसार ही इसका प्रयोग किया जाता है । यह कथावस्तु के विकास तथा पात्रो के चरित्र-चित्रण में सहायक होता है । इसमें कथावस्तु में नाटकीयता और सजीवता आ जाती है । इसके द्वारा प्रासंगिक घटनाओं का भी वर्णन कर दिया जाता है । पात्रो की आन्तरिक मनोवृत्तियो के स्पष्टीकरण में भी यह सहायक होता है । इसका विधान पात्रो के चरित्र, स्वभाव, देश, स्थिति, शिक्षा, अशिक्षा आदि के अनुसार होना चाहिए । पात्रों के वार्तालाप में स्वाभाविकता का होना अत्यंत आवश्यक है ।

सूर्यदीन यादव के उपन्यासों संवादयोजना पात्रों के अनुकूल होती है छोटे-बड़े संवादो द्वारा पात्र एक दूसरे से यह समाज, परिवेश ही यथार्थ कथा कहते है । उनके संवाद रोचकता, स्वाभाविकता, व तर्क बद्धता जैसे गुणों से ओत-प्रोत हैं । संवादों का स्वच्छ प्रयोग सूर्यदीनजी ने किया है । कुछ संवाद कथानक को गति प्रदान करते हैं तो कुछ पात्रों का चारित्रिक उद्घाटन करने में सहायक सिद्ध होते हैं । जैसे 'अँधेरा जहाँ उजाला उपन्यास में सदानंद का अधिकांश चित्रण संवादों के माध्यम से हुआ है- "हर गाँव में एक-दो सदानंद होते हैं, जो पूरे गाँव के आवागमन व दु:ख-दर्द की खबर रखते हैं । कब, कौन, कहाँ जा रहा है, क्या कर रहा है, किससे मिलता है, किसे कौन सताता है आदि-आदि । और उसे दूर करने का भी यथाशक्ति प्रयास करते हैं । सदानंद सच्चाई के मार्ग पर चलते हैं। उन्हें बदलते हुए परिवेश को देखकर आत्मग्लानि होती है, वे कहते हैं अब तो गाँव के

चोर ससुरे घर में ही सेंघ फोड़ते हैं । गाँव घर की बहन बिटिया लखते हैं । अर्थात् अब तो चोरों का भी स्तर गिर गया है । हर गाँव में खुरपंची जैसे चोर विद्यमान हैं ।"[५२] तो कुछ संवाद पाठक के मन में कौतुहलता उत्पन्न करके उपन्यास को पढ़ने के लिए आकर्षित करते हैं । ज़ब राजकरण फगुनी को अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है तब फगुनी कितना बड़ा सत्य कहती हैं चोरी छिपे मैं पवित्र और किसी के सामने अछूतिन हूँ । मेरे हाथों से मेले में जलेबी खाये थे । क्या वह गुप-चुप चोरी छिपे वाली बातें जाहिर तौर पर नहीं हो सकती ? मैं तुम्हें सब कुछ दे दूंगी, लेकिन समाज के सामने चिल्लाकर कह दो मैं फगुनी से प्यार करता हूँ, इसे चाहता हूँ । बोलो चुप क्यों हो ? तो वही 'ममता' वह एक ऐसा आध्यात्मिक श्रोत हैं जो केवल मंदिर की पूजा-सी, कोठरी में बंद किए-सी न रहकर वह एक ऐसी जगत जननी है जो नियंता के निकटस्थ रहती है । तथापि अहं न जलाकर सारे संसार को पुष्पित करने वाली एक सीधी-सादी नारी भी है और निर्देशिका भी । अतः नारी एक नारी होती है जो शहर की हो या गाँव की, पढ़ी-लिखी हो या अनपढ़ । बाहरी शिक्षा सब कुछ नहीं है । तो वहीं पर ममता कहती है कि "आज मै अहसास कर रही हूँ कि बेटियों की पढ़ाई कितनी जरुरी होती है । मनचली तू ही नहीं ज्यादातर माँ-बाप यही सोचते हैं कि बेटियों को पढ़ाकर क्या मिलेगा ?....लोग यह क्यों नहीं सोचते है कि पढ़ी-लिखी बेटी अपने माता-पिता को भले ही कुछ न दे, किंतु अपनी संतान और अपने राष्ट्र को काफी कुछ दे सकती है ।"[५३] तो वहीं पर साघव काका कहते हैं कि "रामजीत तुम्हारा कहना सच हैं सुग्गे-चिरई जैसे खिलौने के बिना शादी हो सकती है । होती है.... पर भारतीय संस्कृति को सजीवित रखने के लिए कोशिश तो अवश्य करुँगा, जिन्हें तुम खिलौने समझते हो, दरअसल वे ही तो हमारी संस्कृति के जीवन्त सबूत एवं प्रतीक है ।"[५४] गाली को अनुचित मानने पर साधव रामजीत को समझाते हैं वह गाली नहीं, रिश्ते मजबूत करने की दवा है । कच्चे नकली रिश्ते होगें, तो वे गालियाँ सुनकर भाग जायेंगे । वे मीठी, मजाकभरी गालिया जैसे शब्द चन्द्रमा से धब्बे के समान है । तो वही पर सुंदरी तडपी और बोली-"नीच कमीने मलिच्छ तू है। जरा सी मरदई है तो किसी पुरुष से मरा ।....अभी चप्पलों से मार-मार करके तेरा मुँह तोड़ दूंगी"[५५] तो वहीं पर अँधेरा जहाँ उजाला' उपन्यास में जब शिवरानी कहने लगती है-"मैं रामदत्त को देखती हूँ तो ऐसा लगता है जैसे पानी या शीशे में पति देवदत्त की तस्वीर देख रही हूँ। मन ही मन उस प्रतिबिम्ब को देखकर चोंच मार रही हो ।"[५६] लेकिन विड़म्बना यह भी है कि जहाँ पेट की आग है, वही मनुष्यता भी है रामजीत शोषण और अन्याय की सख्त खिलाफत करता है । रामजीत गरीब दुःखियो का साथ देता है । वह किसी का शोषण होते नहीं देख पाता है, सत्य और न्याय के लिए खड़ा होता है । वह प्यारे

गाँव और गँवई लोगों को छोड़कर शहर नहीं जा सकता है । उसे गाँव की मिट्टी से बेहद प्यार है । रामजीत कहता है यदि कोई अर्जुन बनने का दावा भी करता है तो उसे शकुनियों दुर्योधनो द्वारा किसी फरेब में फँसाकर राह से विचलित कर दिया जाता है या मार दिया जाता है । जिस गाँव में शुकरु जैसे शकुनि और धर्मसिंह जैसे दुर्योधन हैं वहाँ इसी तरह विद्याधामों का संहार होता है ।

'दूसरा आँचल' उपन्यास में अमित के चाचा जैसे चाचा आज हम बड़ी मुश्किल से पाते हैं । वह अपने भतीजे की तरक्की, सुख, इज्जत, स्वावलम्बन एवं अध्ययन के लिए भी सदैव सलाह-सूचन एवं सहायता दिया करते हैं । उन्हें अमित अपना बेटा ही लगता है । तो दूसरी तरफ 'दूसरा आँचल' उपन्यास में ही बलकरन ने अपने चाचा की मृत्यु के बाद अपनी लावण्यमयी जबान चाची का वर्णन कर हू-ब-हू दृश्य खींचा है । हमारे समाज में यत्र-तत्र खासकर गाँव में कुछ वर्गों में कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि एक भाई की मृत्यु के बाद अन्य छोटे या बड़े विधुर भाई अपनी विधवा भाभी या लघुभ्राता की पत्नी को पत्नी का स्थान देकर बिठा लेता है । तो वहीं पर दवेजी शिक्षित हैं । ब्राह्मण हैं । बीसवी सदी के महानगर वासी हैं । फिर भी उन्होंने अपनी कुल मर्यादा, ब्राह्मणतत्व के सामने बेटे के प्रेम को स्वीकार नहीं किया । आज दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँच गई है । जब दो प्राण एक होने का पक्का निर्णय कर लेते हैं तब उन्हें सांसारिक बंधन में बाँधा नहीं जा सकता । दवेजी की भाषा इतनी गलीच है कि लगता ही नहीं वह शिक्षित उच्चकुलीन ब्राह्मण हैं । घिसे-पिटे संवाद जो सदियों से बोले जा रहे हैं उनके मुँह से निकलते हैं ।

तो वहीं पर 'मां का आँचल' उपन्यास में स्वयमेव संवाद छिड़ जाता हैं । "औरते बारह-मासी फूल खिलानेवाले पौधे की तरह बारहों महीने खिली रहे सब उसे निचोड़ते रहें । औरत को गाँव में कभी आराम नहीं । वह भी जहाँ दरिद्रता गरीबी हो वहाँ तो नारी दशा और दयनीय है ।"[५७] तो वही पर 'ममता' उपन्यास की नायिका ममता कहती है कि सुलह, शांति, ममता, तनाव-संघर्ष प्रेमभाव सब कुछ मिलकर ही तो जीवन कहलाता है। दीवार, ईंट, गारा, धन, बंड़ेर, कमर बस्ता-तरक और छाजन से बनकर घर-घर कहलाता है । उस घर में ममता का वास होता है । ममता का सागर जब उमड़ता है । तो कोई रोक नहीं सकता है, वह अपने आप न्यौछावर होता रहता है यत्र-तत्र सर्वत्र ।

'प्रेमश्रोत' उपन्यास की सूत्रधार शीला कथा की बागड़ोर निर्भयता विवेक एवं संयम से पकड़े हुए है । जीवन के माधुर्य और कटु सत्य का यथार्थ यादवजी इस उपन्यास में दुविधा पूर्वक स्थिति में ला देते हैं । शिल्प शब्द एवं समन्वय भावनाओं की अभिव्यक्ति

में वे ढ़ीले नजर आती हैं । वैसा शायद कच्ची उम्र और अपूर्ण शिक्षा में अभाव में हुआ है । जंगल में डाकू व युवती का संवाद ऐसा है मानो एक दूसरे पर कंकड़ फेके जा रहे हों । कथोपकथन की शैली शुष्क होने के बावजूद संवाद से रहस्याद्घाटन तो होता ही है । वार्तालाप करते-करते कथा आगे बढ़ती है ।

'दूसरा आँचल' उपन्यास का यह संवाद अमित को विष के समान लगता है । पर वह कटु सत्य कहने में संकोच नहीं किया । "आज हमारा पूरा देश उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम तक कहीं भी जाइये यही पाइयेगा कि माँ-बाप बच्चो के साथ खेलने, उन्हें पढ़ाने, उन्हें प्रकृति की गोद में ले जाकर पर्यावरण का ज्ञान देने की फुर्सत नहीं पाते । यों भी कह सकते है कि उन्हें बच्चों के क्रिया-कलायों मे हिस्सेदारी करने की महत्व ही नहीं मालूम इसीलिए रूचि नहीं लेते हैं । एक कहावत हैं-"काजी जी क्यों लटे, शहर के अन्देशे ।"[५८]

सच्चे प्रेम के सामने सांसारिक कोई कारण कारगर साबित नहीं होता । सूर्यदीन यादवजी ने मानव मूल्यों का गहराई से मूल्यांकन किया है । साथ ही जीवन जीने की सम्भावनाओं को व्यक्ति के मानवीय गुणों को भी गौरव प्रदान किया है, वे संवादो द्वारा पर्ते खोलते चलते हैं । रामजीत और सुंदरी के संवाद सही मायने में हमारे समाज के मानसिक, दैहिक, आर्थिक, और परम्परागत रूढ़िवादी धारणाओं का खंड़न करते हुए कुछ हटकर हमे गहराई से सोचने के लिए विवश कर देते हैं । यथार्थ के तराजू में तौलकर न्यायिक तौर पर गुणात्मक तत्वों को प्रकाश में लाता है । यादवजी ने डंके की चोट पर टकोर कर समाज के कायर लोगो को झकझोर कर जगाने का प्रयास किया है ।

'एक सफर के मुसाफिर' का कथोपकथन सरल है । धनबल की शक्ति देखकर कोई मुँह खोल नहीं रहा था । और तो कोई नहीं बोला । किन्तु लछिमन धनबल से तीन साल छोटे होने के बावजूद एक न्यायिक दृष्टि से देखते हुए बोला,-"किसी के गुप्तांग या नाजुक इन्द्रिय पर खतरनाक, घातक-दाँव-पेंच लगाना सरासर, बेईमानी है, ज्यादती है।"[५९] धनबल की पड़ोसन जब धनबल के पिता को यह बात नोन-मिर्च लगाकर बताती है तब धनबल के पिता मारने दौड़ते है तथा मार खाने के भय से धनबल घर छोड़कर भाग जाता है, तब भी लछिमन कहता है-"सारा दोष तुम्हारी जेठानी पड़ोसिन का है । उसने तुम्हारे घर में फूट डाल दी । बाप-बेटे में झगड़ा करा दिया । धनबल भैया को बताकर जाना चाहिए था । यही तो इस गाँव के जवानों की कमी है । वे गहराई से सोच विचारकर कदम नहीं रखते हैं ।"[६०] 'एक सफर के मुसाफिर' उपन्यास गुजरात, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र तीन राज्यों की संस्कृतियों परिवेशों का यथार्थ दस्तावेज है । गुप्तचर विभाग के विजय

और केवल गायब होती लड़कियों के गुनहगार तक पहुँचने के लिए रूपा नामक लड़की के साथ कभी लंबे संवाद करते हैं तब लगता है कि इतने बड़े कथोपकथन से कथा अवरोध उत्पन्न हो सकता है, लेकिन जासूसी करते समय गुप्तचर सिपाही को सत्य असत्य बोलना और भिन्न भिन्न रूप भी धारण करने पड़ते हैं। रूपा के साथ नक़ली प्रेम का नाटक करने से जासूस विजय को लंबा वार्तालाप करना पड़ता है। जिससे विजय के प्रेमजाल में आकर उन पर विश्वास करके उस लड़कियों के सौदागर तक पहुँचाती है। इन्हीं लंबे संवादों द्वारा ही विनय गुनहगार तक पहुँचता है। अत: लंबे संवाद भी जरूरी लक्ष्यांक तक पहुँचाने में सहायक हैं। विजय और केवल रूपा (गुनहगार) के घर पहुँच जाते है तो रूपा से संभलकर संवाद करते हैं। ताकि रूपा को यह पता न चले कि-विजय और केवल सरकारी जासूस है। यथा रूपा उनकी आँखों में आँखें डालकर बोली-
"मिस्टर विजय तब तो आप हमारे घर पहुँच ही गये हैं।"

विजय हिम्मत ब्राँधकर बोला 'हाँ'।

'कहाँ है मेरा घर।' रूपा ने पूछा।'

विजय निरुत्तर खड़ा रहा।

'क्यों चुप हो गये ?' 'रूपा ने डपटकर कहा।

'वह तो तुम्हीं बता सकती हो ?'

'हाँ, लेकिन तुम्हें भी तो जानना चाहिए।'

'आपके बताये बिना। मैं कैसे जान सकता हूँ'

'क्या अभी जान नहीं सके ?' रूपा बोली।

'जानता होता तो बता देता ना।'

रूपा चुप रही फिर बोली-'विजय अब तो मैं तुम्हारी हूँ और तुम हमारे हो।'

'हाँ सो तो है।' विजय ने कहा।

'तो एक बात कहूँ मानोगें...जो कहूँ करोगे ?'

पर पहले अपना घर तो दिखाओ 'फिर जो कहोगी, करूँगा। विजय ने चालाकी से बात की।

'घर दिखाने से पहले मैं आप से कुछ आशा नहीं रख सकती क्या ?'

'नहीं पहले यह बताओं कि हम कहाँ ठहरे है ?' विजय बोला ।

'इस समय आप दोनों मेरे घर पर है ।' रूपा बोली ।

दोनों आश्चर्य से बोले-'यह घर नहीं यह तो पानी का जहाज है ।'

'हाँ यही जहाज ही मेरा घर है ।

उपर्युक्त विजय और रूप के बीच हो रहे संवाद मात्र नाटकीयता है । वह अनावश्यक और लंबा संवाद लग सकता है किन्तु यदि विजय अनजान न बनता तो रूपा द्वारा पहचान न बना पाता । विजय उसके साथ जासूसी कर रहा है । और रूपा भी यह जांचने के लिए वह सच्चा प्रेमी है या कोई जासूस तो नहीं है, उससे बन ठनकर सम्भलकर बातें करती है । ऐसे में जासूसी करते समय, भले ही लगता है कि कथा रुकती है, पर वह परिसंवाद भी उसी कथा का बेजोड़ आवश्यक नाट्यशैली का एक तत्व है ।

सूर्यदीन यादव के उपन्यासों में देशकाल और वातावरण :

उपन्यास शिल्प का एक महत्वपूर्ण तत्व उसका वातावरण भी होता है । उपन्यास में वर्णित घटनाओं की सत्यता का विश्वास दिलाने के लिए कहानीकार अपने कथानक के अनुरूप सजीव वातावरण का निर्माण करता है । आज के उपन्यासों में वातावरण सज्जा की वस्तु नहीं है । वर्तमान उपन्यासों में यथार्थ परिवेश से संबद्ध मानव जीवन की संवेदनशील परिस्थितियों का निरूपण अधिक होता है । आज उपन्यास में व्यक्ति चित्रण प्रमुख है, फलतः व्यक्ति से जुड़े हुए परिवेश का यथार्थ निरूपण हुआ है ।

पात्रों के चित्रण को पूर्णता और स्वाभाविकता देने के लिए देशकाल या वातावरण का ध्यान रखना जरूरी है । घटना का स्थान, समय, तत्कालीन विभिन्न परिस्थितियों का पूर्णज्ञान उपन्यासकार के लिए आवश्यक है । चरित्रों का चित्रण उनके अनुसार ही होना चाहिए । देशकाल और वातावरण का वर्णन उस सीमा तक उचित है, जहाँ तक कि वह कथा प्रवाह में सहायक हो तथा पाठकों को यह लगे कि वे जो पढ़ रहे हैं, वह काल्पनिक न होकर यथार्थ है ।

सूर्यदीनजी ने अपने उपन्यासों में पात्रों के अनुरूप परिवेश योजना की है । व्यक्ति अपने परिवेश की उपज होता है । जिस परिवेश में वह जीता है । उसी के अनुसार उसकी मानसिकता और व्यवहारिकता का विकास होता है ।'दूसरा आँचल' उपन्यास में अमित की मानसिकता स्पष्ट करने के लिए भौतिक वातावरण का निर्माण कुशलता पूर्वक हुआ है "एक डेढ़ महीने में यह कितना बदल गई है स्कर्ट-शर्ट में दुधमुँही बच्ची सी लगती

थी । अब साड़ी में पूरी औरत लगती है । पहले न शर्म न संकोच । अब लगता अपनी नहीं कोई पराई है । किसी दूसरे की हो गई हो । हमसे छिन गई हो । एक पेड़ से टूटकर दूसरे पेड़ में जुड़ गई हो ।"[६१]

'चौराहे के लोग' उपन्यास का ग्रामीण परिवेश ग्रामीण भाषा और बोली में विशिष्ट अर्थकरता के साथ अभिव्यक्त हुआ है जैसे-"माँ खाने के लिए बुलायी ।"[६२] या मेरी बात सुन पंड़ित जी जैसे पानी बिन मछरी नाच उठे हों ।' इत्यादि इसी प्रकार के प्रयोगों से बचकर भी परिवेश विशेष की भाषायी अस्मिता को बरकरार रखा जा सकता था । यह उपन्यास अपने लघु क्लेवर में राष्ट्रीयता को बांधते हुए हर चौराहे के अनेक चेहरों की पहचान कराता है । चौराहा किसी एक गाँव या शहर का नहीं, वह हर गाँव, हर शहर के उन चेहरों से भरा रंग-बेरंगी, बहुआयामी, बहुभाषीय, भिन्न संस्कृतियो एवं परिवेशो का मिला-जुला भारतीय मानचित्र है । 'चौराहे के लोग' उपन्यास में भावेश को केन्द्र में रखकर कथा को तैयार किया गया है, कथा की समस्याएँ ज्वलंत और अद्यतन निर्धनता, प्रेम का इसमें बड़ा सटीक चित्रण है । भाव, अनुभाव और संचारी भावो के सुंदर प्रयोग है। सभी अवस्थाओं के गुण-दोष वर्णित है । भावेश शहर और गाँव को जोड़ता है । जातीय संस्कार और परिवेश कथा में फैले हुए हैं ।

सूर्यदीन यादव जी की जन्मभूमि उत्तरप्रदेश ग्रामीण प्रकृति सुंदरी की मुख्य क्रीडास्थली रही है, जिसमें इन्होंने अपना बचपन निर्द्वन्द्व रूप से बिताया । इनका समस्त उत्तरीय आंचलिक साहित्य प्रकृति मनमोहक सुंदरता से परिपूर्ण है । अतः इनके उपन्यास में इसकी स्पष्ट झलक हमें दिखाई देती है ।

आंचलिक उपन्यासों में परिवेश की अहं भूमिका होती है । यहाँ समग्र अंचल नायक बनकर आता है । पात्र एक ही परिवेश की उपज है । पारिवारिक जीवन मकड़ी के जाले की तरह उलझा है । देश के ग्रामीण परिवेश का सुंदर चित्रण है । घर-गाँव एवं कृषक के जीवन की कथा है । फागुन महीने में फसलो की कटनी, चैती सा वर्णन काफी सुंदर है । मनचली हवाएँ सबके मन को मथती हैं । तो वहीं पर 'दूसरा आंचल' उपन्यास में अमित की दृष्टि लोगों की समस्याओं पर ही आकर अटक जाती है । चाहे ग्राम्य परिवेश हो या शहर । दो चार कदम चले नहीं कि कोई न कोई अपना दुःखड़ा कहने लगता है । अमित तीखी वेदना से आर्द्र हो उठता है । बाद में उसे अपनी शक्ति मर्यादा का ध्यान आता है-"बड़ा न्यायी होता तो अपने गाँव वालों को ही ठीक करता पहले । हाँ, उसके गाँव में क्या नहीं होता आया है ।"[६३]

'दूसरा आँचल' उपन्यास में गाँव और शहर के परिवेश के हर रूप, हर घटना, हर आदमी के चरित्र, प्राकृतिक एवं भौतिक सभी पर यादवजी ने नजर अंदाज किया है और उन्हें उसी रूप में जीवंत भी किया है ।

'माँ का आँचल' उपन्यास में खेत परिवेश के इतने मर्मस्पर्शी चित्रण है कि "पढ़ते-पढ़ते पाठक भी हंसिया पकड़ कर फसल काटने लगे ।"[६४] विचारे निर्धन किसानों की जिंदगी भी उस दारिद्रय को जीवन प्रदान कर रही है । हमारे ग्राम्य आंचल में जब हम विचरण करते हैं तो ऐसा लगता है ग्राम्यवासियों को अपने अभावों का ज्ञान होते हुए भी संतोष का गर्व है जो उनके जीवन को उस ग्राम्य धरती को जकडे हुए है । वे किसी हालत में जन्मभूमि माँ का आँचल छोड़ना नहीं चाहते ।

'माँ का आँचल' उपन्यास में गाँव वालों की धारणायें एवं अज्ञानता का बहुत सुंदर वर्णन पढ़ने को मिलता है । यथार्थ परिवेश का दर्शन होता है । गाँव के क्रिया-कलाप का अजीब चित्रण आँखो के सामने खड़ा हो जाता है ।

मानव जीवन देशकाल और उसके आस-पास घट रही घटनाओं से प्रभावित होता है । मनुष्य हरक्षण, हर परिस्थिति पर विजय पाने के लिए संघर्षरत रहता है । मानवजीवन उन घटनाओं द्वारा नैतिक दबाव में रहकर मानवता का उजाला पक्ष निखारता रहता है । 'ममता' उपन्यास का कथ्य जीवन के गहन अनुभवों से उपजी घटनाओं का चित्रण है।

'ममता' उपन्यास में गाँव में रहनेवाली नारियों में भी समाज, परिवार, परिवेश को सुधारने आगे लाने के लिए जिज्ञासा, उत्साह एवं सुझ है । कथानक का विस्तार बढ़ाने के साथ ही नई चेतना जगाने का भी काम करती है । इसी प्रकार प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र भी नारी चेतना, नारी जागृति एवं उनके अंदर निहित अदम्य शक्ति को बाहर लाने का प्रयास है । थोड़ा अक्षर ज्ञान पाकर ममता में अदम्य उत्साह एवं आत्मविश्वास जाग उठा है । घिसे-पिटे कथोपकथन, कथ्य शिल्प के हटकर कुछ मौलिकता के साथ आँचलिक परिवेश में मुखरित हुआ है । मानव समाज एवं उसकी वृत्तियों का यथार्थ चित्रण करने वाले, अलग पहचान बनाने वाले रचनाकार यादव जी हैं ।

'चौराहे के लोग' उपन्यास में उपन्यासकार कहते हैं कि यह संसार वही रहता है पर इंसान के विचार, उसके साथ घटती घटनायें, अनुभव, अनुभूतियाँ बदलती रहती हैं, एक ही गाँव, एक परिवेश के निवासी किन्तु कुछ समय के अंतर में मिलने पर परिवर्तित दिखाई देता है । समय और जीवन परिवर्तनशील है ।

जहाँ तक देशकाल और वातावरण की बात है, उस दृष्टि से भी उपन्यास कसा हुआ है । उपन्यासकार की संवेदना में समकालीनता की धड़कन है । चेतंना और स्पन्दन है। पूरी रचना तात्कालिक प्रभाव की दृष्टि से मर्यादित है । इसमें स्थायित्व है । जहाँ एक ओर इस उपन्यास में परिस्थितियों के प्रति विद्रोह का भार है, वहाँ दूसरी ओर परिवर्तन की आकांक्षा भी है, बाह्य वास्तविकता की उपेक्षा या अवज्ञा कहीं नहीं है । चूकि यादव जी कवि और उपन्यासकार दोनों ही है, इसीलिए उनकी रचनाओं में जहाँ कहानीकार, उपन्यासकार समाज और उसके बिस्तार से जुड़ा होता है वहीं कवि की हैसियत से जीवन और उसकी गहराई के प्रति भी सतर्क रहता है ।

उपन्यासकार यादव जी ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि अन्ततोगत्वा जीत सत्य की, अच्छाई, ईमानदारी, आदर्श और चरित्र की ही होती है । जो कटु सत्य है । करुणा, दया, इन्सानियत और संवेदना ही समाज की मूल और असली धरोहर है, और यह भी सत्य है कि जब बाह्य परिस्थितियों को ही बदलने के चक्कर में हम पड़ रहे हैं तब कुछ भी होनेवाला नहीं है । सही और ठोस परिवर्तन तो तब होता है जब उसे बाहर से अंदर तक बदला जाये । महज नारों में नहीं मात्र कथनी से नहीं अपितु उन नारों को अमल करने और उसे क्रिया रूप देने से उसकी अर्थवत्ता कायम रहती है।

उपन्यास जमीन अपने और औपन्यासिक गुणधर्मो और क्रियाओं को समेटे हुए है। उपन्यास कहीं से भी बिखरा हुआ नहीं है । क्लिष्टता का भान नहीं कराता । समग्र रूप से इसका प्रभाव चारुता तथा सरसता से पूर्ण है ।

'अँधेरा जहाँ उजाला' उपन्यास यादव जी के दो उपन्यास 'माँ का आँचल' और 'दूसरा आँचल' से वस्तु एवं शिल्प की दृष्टि से भिन्न है । इस उपन्यास में कथा तत्त्व औपन्यासिक दृष्टि से स्पष्ट है । कथातत्व की रोचकता प्रत्येक वर्ग के पाठक के लिए सहज है । शिल्प की दृष्टि से 'माँ का आँचल' कथावस्तु अति गतिशील तथा भावभूमि वैविध्यपूर्ण है ।

उपन्यास में जहाँ संवादों की सघनता है वहीं वातावरण की सजीव प्रस्तुति में कमी नहीं है । उपन्यासकार ने बहुत ही गहराई से उसे उभारने का प्रयास किया है । भारतीय परिवेश में हजारो वर्षो से चला आ रहा छुआछूत का भार आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है । यह बात और है कि आज बहुत लोग इस पाखंड से दूर रहने लगे हैं । काफी परिवर्तन आया है फिर भी इसकी जड़े पूरी तरह से नष्ट नहीं हुई हैं ।

इस उपन्यास में जहाँ परम्पराओं और रुढ़ियों का एक ओर विरोध है वहीं दूसरी ओर अल्पांश ही सही किसी न किसी रूप में उसका समर्थन भी है ।

'ममता' उपन्यास में देखने को मिलता है कि स्त्रियाँ हरकाल में रुढ़िवादिता और परम्पराओं के ही निर्वाह में संलग्न रही हैं । जान पड़ता है कि रुढ़ियाँ और परम्पराएँ ही इनकी धरोहर हैं । चाहे वह कोई व्रत, उपवास हो, धर्म कर्म का निर्वाह हो या फिर कोई त्योहार और पास-पड़ोस, घर गाँव की कानाफूसी या ऊँच-नीच की बात हो, इसमें इनकी अग्रणी भूमिका रही है और आज भी है । 'एक सफर के मुसाफिर' उपन्यास में लेखक ने लछिमन का चरित्र चित्रण कुछ इस प्रकार किया है, दूर का प्रेम अमृत की तरह अमर होता है। लेकिन नजदीक का शारीरिक प्रेम गंधाकर हमें बदनाम कर देता है। उस दिन करुनी कहने लगी बचकानी बातों को वहीं की वहीं शुद्ध पवित्र बनी रहने दो। यह गाँव-समाज मर्यादाओं के काँटे से घिरा है, यहाँ मुक्त रूप से कोई प्रेम तो क्या खुले आम मिलकर हँस-बोल भी नहीं सकता है । करुनी की ऐसी सच एवं ऊँची बातें सुन मन संवेदना से भर जाता है । ऐसी अनेक करुनी गाँव समाज में होंगी, जो मन की इच्छाओं को दिल में दफनाकर हर साल रोकर ससुराल चली जाती होंगी ।

सूर्यदीन यादव के उपन्यासों का उद्देश्य :

उपन्यास शिल्प का महत्वपूर्ण भाग है कहानीकार का जीवन दर्शन जिसे हम उपन्यास का उद्देश्य भी कह सकते हैं । यह निर्विवाद रूप से माना जाता है कि उपन्यास कभी उद्देश्यहीन नहीं हो सकता है । वह किसी न किसी उद्देश्य को सामने रखकर लिखा जाता है । उपन्यासकार का उद्देश्य समाज सुधार, मनोरंजन सिद्धान्तों का प्रचार या फिर किसी यथार्थ का परिचय कराना, किसी चरित्र का विश्लेषण करना या वातावरण का निर्माण आदि हो सकता है । समाज के स्त्री-पुरुष उनके आपसी संबंधों, विचारों, अनुभवों, इच्छाओ सफलता संघर्ष या उपलब्धियों का निरूपण उपन्यासकार करता है । आधुनिक कथाकार के लिए ये स्थितियाँ कल्पनात्मक नहीं हैं किन्तु स्वयं की भोगी हुई या देखी हुई हैं । सामाजिक परिस्थितियों से उपन्यासकार प्रभावित होता है । अपने अनुभवों से निष्कर्ष निकालता है और विचार या उद्देश्य का रूप, निर्धारित करता है जिसे हम जीवन दर्शन कहते हैं। बिल्कुल उसी तरह जैसे कुम्हार मिट्टी को गूँथता हैं, उसे चाक पर चढ़ाता है और अपने हाथों से मन में छिपी आकृति को साकार करता है ।

कुछ लोग उपन्यास का उद्देश्य केवल मनोरंजन मानते हैं किन्तु उपन्यासों में मनोरंजन के साथ ही किसी विशिष्ट उद्वेश्य का प्रतिपादन भी होता है । श्रेष्ठ उपन्यास लेखक अनुभवी

और विचार शील होते है । वे लोगों के भावों, विचारो और व्यवहारों आदि का भली भाँति निरीक्षण अनुशीलन कर उनके सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करते हैं और उस अनुभव और ज्ञान की सहायता से नैतिक महत्व का ऐसा चित्र अंकित करते है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती ।

सूर्यदीन के उपन्यासों का प्रमुख उद्देश्य है विभिन्न मानसिक ग्रंथियों से कुंठित चरित्रों का विश्लेषण करना, सामंती प्रथा, जड़वादिता, जातिभेद, निर्धनता और ग्राम्य अँचल की समस्याओं पर प्रकाश डालना । अनुभव एक ऐसी ऊर्जा है जो कवि या रचनाकार के हृदय मे बार-बार अवतरित होती है, फिर किसी रचना के माध्यम से रुपान्तरित होती है । सूर्यदीन यादव यथार्थवादी, धर्मनिष्ठ, व उदार स्वभाव के रचनाकार हैं ।

सूर्यदीन यादव के संकल्प एवं श्रम का, सोने और सुहागे का संयोग है । वे जिस कार्य को हाथ में लेते हैं उसे सम्पन्न किये बिना विश्राम नहीं लेते । पत्रिका सम्पादन करना, समयानुसार प्रकाशित करना, लोहे के चने चबाना जैसा है । अधिकांश सम्पादक हार-थककर चुप्पी साथ लेते हैं । लेकिन यादव जी अविरत, अथक, अचूक समय के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर आगे बढ़ते रहते हैं । यह उनकी साहित्य, समाज एवं लोगों के प्रति लगाव, अभिरूचि एवं भाव प्रेम का परिणाम है ।

सूर्यदीन जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, दाम्पत्य, जीवन सम्बन्धी तथा ग्रामीण जीवन विषय की समस्याओं का निरूपण किया है। एक बात और उल्लेखनीय है कि परदेश में रहते हुए भी यादव जी एक क्षण को अपने गाँव से विलग नहीं हो सके । गाँव की सुखाकारी समृद्धि, खेती, कृषक, महिलायें सभी उन्हें बहुत याद आते हैं । उनकी आत्मा शहर में चैन नहीं पा सकती । अपरिचितों में भी माँ, भउज़ी, बहिनी, काकी शक्ल का हू-ब-हू चित्रण करना यह सिद्ध करता है कि वे अपने गाँव अपने परिवार की कितनी चरम सीमा की ऊँचाई तक पहुँच जाना चाहते हैं।

सूर्यदीन के उपन्यासों का प्रमुख उद्देश्य व्यक्तियों के जीवन का अंकन करना है कथा साहित्य में सामान्य जनसमाज को शोषण के प्रतीक के रूप में ही देखा गया है किन्तु यादव जी ने उसे स्वाभाविक मानव के रूप में निरूपित किया है । यहाँ सामान्य पात्र के मन की गहराई में जाकर भाव सत्यों को खोजकर अंकित किया गया है । इनके उपन्यासों में धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक व पारिवारिक विसंगतियों पर कसकर व्यंग्य किया गया है तथा हमारे ज़ीवन के वर्णो की सड़न की निर्मम आलोचना हुई है ।

शहर ने सभी जातियों को एक कारखाने, मील, फैक्टरी, प्रेस, संस्थाओं में कार्यरत करके वर्ण व्यवस्था, जातिभेद का निर्मूलन कर दिया है । सब एक ही केटेगरी में गिने जाते हैं । अतः समानता का भाव समभाव की जड़े फैलती जा रही है । स्वतन्त्रता के पश्चात् हरिजन उद्धार, अनामत प्रथा ने तो जाति के झंड़े को उतारकर गाँव तक सीमित कर दिया है । गाँव का चमार आज शहर में पढ़-लिखकर ब्राह्मण क्लर्क का बोस बना बैठा है।

गाँव में कितनी अज्ञानता, स्वार्थपरता, कन्या के प्रति दुर्लक्ष्य, सात-आठ साल की कलासी को डंडे से नापकर शादी कर दी । क्या कहें वह समय का तकाजा था । शायद अशिक्षा के कारण था । यादव जी ने इन समस्याओं को उठाकर इन कुप्रथाओं पर पूर्ण विराम लाना चाहते है ।

इस उपन्यास में पारिवरिक समस्याएँ नित्य उभर कर आती है और ममता की कुशाग्र बुद्धि समी-करण करते-करते थकती नहीं । कभी जमीन घर के बँटवारे की बात तो कभी कोई विधवा स्त्री अपने किसी सगे की पत्नी बनकर नात को भात खिलाकर कलंक से बचती है, यह भी एक समाज है । अब ऐसा नहीं होता होगा । सुल्तानपुर के यादव परिवार में या उस गाँव के रस्मानुसार जो कुछ भी यादवजी ने बचपन में अनुभव किया, उनके मन पर अमित छाप पड़ी उसे उन्होंने सत्यासत्य यथार्थ रूप में बिना किसी बनावट या छुपाव के चित्रण कर गाँव की आन्तरिक समस्याओं को प्रस्तुत किया ।

यादवजी 'ममता' को माध्यम बनाकर संयुक्त परिवार के महत्व का अनुमोदन कराते हैं । व्यक्ति, समाज और परम्परागत विचारों एवं रिवाजो में भी बहुत अंश में परिवार की भलाई निहित रहती है । उसके बावजूद नारी को न्याय कहाँ मिल पाता है । जितना अधिक बँटवारा, अलगाव है उतना ही कमजोर असहाय व्यक्ति है ।

डॉ. सूर्यदीन यादव बाह्य रूप से जितने सामान्य सरल व्यक्तित्व वाले दिखाई देते हैं वैसे वे नहीं है । अन्तर्हृदय से वे एक असाधारण व्यक्तित्व एवं पारावीर रचनाकार हैं। उनकी विराटता, दृढ़ता, कर्मठता, निश्चात्मक वृत्ति मानव को मानव मूल्यों का ज्ञान कराने की क्षमता प्रशंसनीय ही है, जो इस उपन्यास में प्रत्यक्ष रूप से देखी जा सकती है. 'अँधेरा जहाँ उजाला' शीर्षक की सार्थकता इसकी एक-एक घटनायें करती हैं । मनुष्य जब तक अन्याय सहता रहेगा तब तक समाज का विकास सम्भव नहीं । अँधेरा क्या है ? उसका उत्तर अनेक अर्थो, प्रतीको, भावो द्वारा दिया गया है । अज्ञानता, जिद्द शोषण, क्रूरता, गरीबी, जुल्म और कायरता हर जगह विद्यमान है । साहस भरा कदम ही उजाला है ।

अंधकार को चीरने के लिए दीप जलाया जाता है । अन्याय के सामने आक्रोश के साथ साहस भरा कदम भी उठाना पड़ेगा । अंधेरा चीरकर उजाला लाना होगा ।

सूर्यदीनजी ने इस कथा द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि वे एक उत्तम उपन्यासकार के साथ ही मानव मन की सूक्ष्म संवेदनाओं को प्रकट करने की भी कुशलता, एवं प्रतिभा रखते हैं ? भावनाओं की अभिव्यक्ति की अद्‌भुत क्षमता के साथ मनोवैज्ञानिक अभिगम भी रखते हैं ।

सूर्यदीन यादव भारतीय संस्कृति के मूल तक पहुँचकर भारतीय वैवाहिक रिवाजों की परम्परा का हेतु समझाते हुए रामजीत की क्रांतिकारी दृढ़ भावना के बावजूद विनम्रता एवं बौद्धिकता से उसकी बेटी के विवाह पर सभी सगुन पूरे कराते हैं । 'अँधेरे से उजाले' की ओर आने की कोशिश प्रकृति का नियम हैं ।

मन तो यही कहता है कि यदि इंसान अपने अंतरमन में झाँककर देखे तो मालूम होगा कि किसी का मन उजला नहीं है । अपना मन ही जब कोरा साफ न हो-तो वहाँ पूर्वग्रह, धृणा, तिरस्कार, उपेक्षा, छोटे-बड़े, गाँव-शहरी के भेद का अँधेरा गहरी जड़ जमाएगा ही, उन्हें उखाड़ फेंकने का प्रयत्न करें तो उजाला अपने आप आकर तमाम प्रश्नों को हल कर देगा । एक दो अपवादों को छोड़कर प्रस्तुत उपन्यास मानव की उच्च्व भावनाओं, लक्ष्यों एवं परिवर्तन की आकांक्षा को उजाले में लाने का सफल प्रयास है ।

यदि आजादी के बाद के गाँव का सही रूप में विकास किया गया होता तो शहर के चौराहे और वहाँ कोने में खड़े ग्राम्य मजदूर अपना तन, श्रम, समय, शक्ति को बेचने खड़े न होते । वे कहीं गाँव में खेत-खलिहान से अनाज ढ़ोते होते । किन्तु यहाँ दीन हीनबनकर ठेकेदारों की बोली पर, उनके इशारों पर आठ घण्टे की दासता स्वीकार करते हैं । ऐसा करुण दृश्य भी समग्र देश के चौराहे पर देखने को मिलता है ।

'चौराहे के लोग' उपन्यास में पाठक सारी घटनाओं के बीच अपने को खड़ा पाता है और इन चेहरों में उसका भी एक चेहरा चौराहे के लोगों के माध्यम से है । वह उन्हीं चेहरों के बीच स्वयं को भी देखता है । इस उपन्यास में एक तरह से लेखक की आत्मसंवेदना का परिचय मिलता है और संवेदना ही उपन्यास को जीवित बनाये रखती है । साथ ही कई कमजोर पहलुओं को उजागर नहीं होने देना यह लेखक की विशेषता है ।

'दूसरा आंचल' उपन्यास मूलतः अहमदाबाद महानगर के प्रेसों और कारखानो में काम करने वाले पूर्वी उत्तरप्रदेश के मजदूरों के बीच की बुनियादी समस्याओं पर आधारित है । वे रोजी-रोटी की तलाश में अपना घर-परिवार गाँव और प्रदेश छोड़कर अहिन्दीभाषी

दूसरे आँचल में आ जुड़े हैं । इस प्रक्रिया में उनका कुछ टूट गया है, लेकिन उनमें कुछ नया भी जुड़ा है । वे दोहरी जिंदगी जीने के लिए विवश है । वे पूरे के पूरे न तो अपने घर-गाँव के रह गये हैं और न महानगर के । वे त्रिशंकु जैसी जीवन की यातना भोग रहे हैं ।

तो वहीं पर 'माँ का आँचल' उपन्यास एक भारतीय प्राचीन संस्कृति की झलक पेश करता है । गुड़ियों का त्योहार, सावन के झूले । सावन में, फगुई-पंचमी, तीज त्योहार पर बहिनिन के भइया घुघरी लेकर आते हैं । पर्व त्योहारो के बहाने हम एक दूसरे के सगे-संबंधियों, बहन-बेटियों, गरीब-दुखियों, जातियों-परजातियों की मदद करते हैं । जिससे एकता और समानता का भाव पैदा होता है । 'ममता' उपन्यास में विधवापन, बेमेल विवाह, बालविवाह, शारीरिक शोषण जैसी समस्या के समाधान के लिए चुनौतियां भी है । निमित्त प्रेम की छिट-पुट फुहारें भी है । उपन्यासकार अपने उद्देश्य में सफल रहा है ।

तो वहीं पर 'अँधेरा जहाँ उजाला' उपन्यास वास्तव में लेखक का भोगा हुआ यथार्थ एवं मनोवैज्ञानिक दस्तावेज है । जिसमें भारत के चौराहे और परिवेश के जर्रे-जर्रे और पर्त-दर-पर्त की सही पहचान है । दु:ख, पीड़ा के साथ एक मीठे सुख का सहलाव है । उजाले की किरण अँधेरे को चीरकर मार्ग प्रशस्त कर सकती है यही उददेश्य 'अँधेरा जहाँ उजाला' उपन्यास की आँचलिक कथा का है ।

इसका उद्देश्य है क्षेत्र विशेष के चित्रण को प्रस्तुत करना । वहाँ के सुख-दु:ख को व्यक्त करना । आती हुई विकास एवं प्रगति की धारा को दिखाना । अंधकार पर प्रकाश का छाना-फैलाना आदि । रचनाकार अपने उद्देश्य में सफल है ।

तो वहीं पर 'चौराहे के लोग' उपन्यास में शिक्षा ज़गत की समस्या और स्वरूप की सुंदर प्रस्तुति है । खेती किसानी की सजीव बातें हैं । यात्रा वर्णन के सुंदर नमूने हैं । व्यवहारिक संवाद और घटनाएँ है । इस दशा में क्षेत्रीय और प्रचलित अंग्रेजी की शब्दावली सराहनीय है । आज की नई पीढ़ी को लेखक ने बड़े ढंग से बेनकाब किया है । कारखाने और उनके मजदूरों की बातें हैं । हर जगह विसंगतियाँ है । शोषण, आर्थिक तंगी, प्रेमप्रपंच और सामाजिक कुरीतियां भरी पड़ी हैं । नाम मात्र के कार्यो से कथाकार ने सब कुछ कह दिया है । अनजाने लोगों में भी दर्शनजन्य प्रेम की लहरों के सुंदर उदाहरण है ।

सूर्यदीन यादव पुरुष रचनाकार होकर भी पुरुष प्रधान समाज में नारी मुक्ति की बात जोरदार ढ़ंग से उठाकर इस आंदोलन में अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज कराते हैं । यह उपन्यास निश्चित ही नारी मुक्ति और नारी चेतना के संदर्भ में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

उपन्यासकार की दृष्टि समाज के सूक्ष्म से सूक्ष्म समस्याओं पर जाती है वह मध्यम वर्ग की मानसिकता का मनोविश्लेषणात्मक चित्र प्रस्तुत कर देता है । डॉ यादव का लक्ष्य ही रहा है मुखौटे वालों को बेनकाब करना और वे अपने उददेश्य में सफलता हासिल करते हैं । अगर हम उपन्यासकार को एक कुशल मनोवैज्ञानिक कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि वे अपने पात्रों के मन में उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने में, उसे पाठक वर्ग के सामने खोलने में काफी हद तक सफल हुए हैं ।

सूर्यदीन यादव ने गतिशील परिस्थितियों में गिरते-पड़ते यथार्थवादी दृष्टिकोण को व्यक्त किया है । बिखरी हुई घटनाएँ और पात्र एक दूसरे के विकास में अपरिहार्य रूप से योग दिये बिना नहीं रह पाते । अनेक अर्न्तविरोधों, जटिलताओं, बनते-बिगड़ते मूल्यों, जीवन की संक्रान्तियों से ग्रस्त अंचल जीवन को चित्रित करना सूर्यदीन यादव का उद्देश्य है। 'एक सफर के मुसाफिर' उपन्यास में लेखक ने गाँव के लोगों की जमीन-जायदाद को लेकर मानसिकता का वर्णन किया है । रामचेत ने राजा की जमीन इतनी चालाकी से अपने नाम पट्टा करवा लिया कि भाइयों को उसका सुराग तक न मिल सका था । जब जमीन का दस्तावेज हो गया तो हालापुर का असली घर छोड़कर बसईपुर में नया अलग घर बनवा लिया था । जब छोटे भाइयों को पता चला तो वे कोशिश किए कि नई जमीन में उन दोनों का भी नाम डलवा दें । बड़े भैया, पर बड़े भैया के पैर ही जमीन पर नहीं पड़ते थे । रामचेत बड़ा स्वार्थी है । उधर धनबल मिलिट्री में भर्ती होकर गाँव की गरीबी, और बेकारी से मुक्त हो गया ।

सूर्यदीन यादव के उपन्यासों की भाषा-शैली :

भाषा व शैली उपन्यास के प्राणतत्व हैं । शैली मुख्यत: वर्णनात्मक, आत्म-कथात्मक, डायरी, पत्र, फलेशबेक, मनोविश्लेषणात्मक, संवादात्मक, काव्यात्मक आदि इन सभी शैलियों का समुचित उपयोग किया गया हैं यद्यपि वर्णात्मक पद्धति सर्वाधिक प्रयुक्त हुई है ।

उपन्यासकार को अपने भाव एवं विचारों को व्यक्त करने के लिए सरस और सरल-भाषा शैली का प्रयोग करना चाहिए । सम्पूर्ण उपन्यास की रचना-शैली एक-सी हो । भाषा का प्रयोग तत्कालीन समाज के दृष्टिकोण से हो-तो अधिक श्रेयकर होता है । परंतु उसमें सरलता का होना अत्यंत आवश्यक है ।

उनकी भाषा के सौन्दर्य में उपमाओं का प्रयोग बेजोड है, जो रचना के अर्थ में दोहे जैसी गहराई भर देते हैं । यादव जी सादरा का वर्णन तुलनात्मक दृष्टि से करते हैं। उनके मन में सादरा की खोली, ग्राम निवासी और उनके ग्राम्यांचल समानान्तर रेखाओं

पर चलते नजर आते हैं । दवेजी की भाषा अति निम्नस्तर की दिखाकर यह सिद्ध कर दिया गया है कि इन्सान जो उगती उम्र में गलत आदत डाल लेता हैं, वह चाहे जितना उच्च स्तर पर पहुँचे या गाँव से शहर में आ जाय अपने मूल स्वभाव को नहीं छोड पाता है।

यादव जी के उपन्यासों की एक और खासियत है उनकी बेहद संवेदनशील भाषा। उनके पास एक ऐसी समर्थ भाषा है, जो कहीं अटकती नहीं है । किसी भी भाव का चित्रण करने में भाषा बहती चली जाती है । यह एक ऐसी भाषा है जिसे उन्होंने जीवन के मीठे-तिक्त अनुभवों से सीधे-साधे कमाया है । इसलिए ऐसा कहीं नहीं लगता कि वह जो कहना चाहते हैं कह नहीं पाये । बल्कि अक्सर वह हमारे समक्ष बहुत थोडे ही शब्दों में पूरा दृश्य उपस्थित कर देते हैं – जैसे "लेखक स्वयं अमित के रूप में सूत्रधार के रूप में उपस्थित रहता है । उपन्यास की भाषा-शैली परिवेश के अनुरूप होने से लगता है कि वह हम परदेशियों की ही व्यथा-कथा है ।"[६५] जो अपनी है । लेखक ही नहीं वैसे अनेक अमित होंगे जो उन सब परिस्थितियों से गुजरे हैं, गुजरे रहे हैं ।

'माँ का आँचल' उपन्यास में चैतू-फगुनी ने गंधर्व, विवाह कर सदानंद से आर्शीवाद ले गाँव छोड़कर चले जाते हैं । सदानंद रोक नहीं पाते हैं । काश ! यह उपन्यास खडी बोली हिन्दी भाषा में होता तो काफी लोकप्रिय बन सकता था ।

ममता के तर्क, दलील और धारधार भाषा से सबूत को मानकर नारी न्याय पाती है । वह आज की नारियों के लिए चुनौती देती है । ममता हमें उत्तेजित करती है कि नारी अपनी शक्ति पहचाने, उठे जागे, हर परिस्थिति का सामना करे । ममता की पारिवारिक सुरक्षा की भावना नारी चेतना की पराकाष्ठा तक पहुँच जाती है । 'ममता' उपन्यास की छोटी-छोटी घटनाओं को श्रृंखला में पिरोते चलना भी एक सृजनात्मक कला है । एक विशिष्ट अनोखी शैली है । अतः इतना तो सभी साहित्यकार स्वीकार करेंगे कि सूर्यदीन यादव एक मझे हुए कहानीकार हैं । उपरांत मानवीय भावनाओं को प्रतिष्ठा दिलाने वाले, नारी चेतना को प्रोत्साहन देने वाले उपन्यासकार हैं । भाषा आँचलिकता का आभूषण पहनकर बाधक नहीं है । आँचलिक भाषा के कारण पात्रों में जीवन्तता एवं ओजसता प्रतीत होती है।

यादव जी ने शिव-रानी की कहानी सुनाकर आत्म-कथात्मक शैली का प्रयोग किया हैं । एक संकुचित सास जो स्वयं भी एक दिन बहू थी । अपनी पीडा, लांछन, अवमानना को भूल नहीं पाती शिवरानी को गर्भवती बनते ही वैधव्य भोगना पडा । उसे जो लांछन सहने पडे उसका परोक्ष वर्णन कर यादव जी ने आत्म कथात्मक शैली द्वारा इस कहानी को मर्मस्पर्शी उत्कंठा व आकर्षण की चरम सीमा तक पहुँचाया है ।

शैली की दृष्टि से यादव जी ने मुख्यतः वर्णनात्मक शैली अपनाई है । प्रभावपूर्ण वर्णन किसी भी साहित्यकार की सफलता की कसौटी होता है । उनके कथा साहित्य में वर्णन–कौशल का उत्कृष्ट उदाहरण देखने को मिलता है । आवश्यक्तानुसार उस शैली में विश्लेषणात्मक, रिपोर्ताज एवं कमेंट्री का पुट दिया है । जहाँ भावुकता की प्रधानता है वहाँ शैली संस्मरण के निकट चली गई है । कहीं–कहीं आत्मकथात्मक, कथन पद्धति से पाठकों से सहज आत्मीयता स्थापित की है नये शैली रूपों में आत्म कथात्मक, कथन–पद्धति, पत्रात्मक, पूर्व दीप्ति, चेतना प्रवाह एवं मनोविश्लेषणात्मक आदि शैलियों का सफल निर्वाह किया है बात को प्रभावी बनाने एवं उसमें व्यंजना लाने के लिए व्यंग्यात्मक शैली का स्पर्श किया है । कहानी कथन में गीत – शैली का प्रयोग करके उन्होंने अपनी प्रयोग धार्मिकता सिद्ध की है । उनकी शैली को किसी एक ढांचे में बाँधकर रखना कठिन है। वास्तव में उन्होंने मिली–जुली संश्लिष्ठ शैली का प्रयोग किया है ।

रामजीत की कमजोरी सुनकर दिवाकर ने कर्म की प्रधानता पर बल दिया है । और सीधी सादी भाषा में उसे प्रोत्साहित करते हुए कहता है कि "नसीब कर्म की दुम। कर्म आगे चलता है पीछे नसीब । कर्तव्यनिष्ठों का साथ नसीब देता है ।"[६६] इस 'अँधेरा जहाँ उजाला' उपन्यास में सामाजिक शोषण व अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाकर सामाजिक चेतना जगाने का अभियान चल रहा है ।

सूर्यदीन यादव ने इस उपन्यास में आल्हा का आयोजन कर रचना में भौतिकता के दर्शन कराये हैं । आजकल के शहरी शिक्षित या अशिक्षित इस वीर रस मान्य शैली से बिलकुल अपरिचित हैं । इस लोकगीत को उपन्यास में स्थान देकर आँचलिकता के सौन्दर्य को रंगीन बनाया है ।

उपन्यास की भाषा–शैली आँचलिक परिवेश के अनुरूप है । अवधी मिश्रित खडी बोली भाषा के प्रयोग से पात्रों के कथोपकथन जीवंत बन पडे हैं । चित्रात्मक, वर्णात्मक, मनोवैज्ञानिक, आत्मकथात्मक एवं आँचलिक कथा की शैली अभीष्ट है । यत्र–तत्र पूर्व दीप्त रागात्मक शैली द्वारा कथा को आगे बढाते हुए लेखक स्वयं आँचलिक पात्र के रूप में दिवाकर की भूमिका में पेश आता–सा लगता है ।

यादव जी मात्र कथा का प्रवाह ही नहीं बढ़ाते हैं बल्कि एक कुशल मनोवैज्ञानिक के रूप में भी प्रत्येक पात्र के रूप में उसकी गुत्थी के सूक्ष्म भावनाओं व वेदनाओं को भी कुरेदकर पाठकों के सामने रखने में सक्षम हैं । यहाँ मनोवैज्ञानिक शैली द्वारा लेखक अन्तरभारतीयता को जीवंत करता हैं । सरकारी शिक्षको, परीक्षकों, मोडरेटरों का सत्य दर्शन

कराया, वह प्रशंसनीय है। हमारे शिक्षण जगत का कटु दर्शन। पाठक उन शिक्षकों के बीच खुद को भी एक चेहरा मानने लगता है।

इस उपन्यास में एक तरह से लेखक की आत्म संवेदना का परिचय मिलता है और संवेदना ही उपन्यास को जीवन्त बनाये रखती है। साथ ही कई कमजोर पहलुओं को उजागर नहीं होने देना यह लेखक की विशेषता है। कहीं कोई लुकाव-छिपाव नहीं न शब्दों का आड्म्बर और न उलझी हुई भाषा-भाव या शैली। यह अवश्य लगता है कि लेखक हर चौराहे पर बिना जरुरत भी रुककर लोगों की हलचल में हस्तक्षेप करता है।

सूर्यदीन यादव के इस उपन्यास में यथार्थ प्रकट करने के प्रयास में धारावाहिता में कुछ अवरोध आ गया है। सामान्य पात्रों को साहित्यिक परिधान पहनाने के प्रयत्न में भाषा-शुद्धि प्रांजलता एवं सौष्ठव का अभाव खटकता है फिर भी आर्कषण तो बना ही रहता है। यादव जी लोकमानस यानी ग्रामीण जीवन शैली के गहन अध्यवसायी लेखक हैं। उनमें मनोविज्ञान का ज्ञान, पात्रों के गूह्य मर्म को भेदने की शक्ति रखता है। यही कारण है कि पात्रों के संवाद स्वाभाविक मानव स्वभाव को प्रकट करते हैं।

जो भी तथ्य या रूप दृश्य हैं वह जमीन है और जमीनमय बनना ही उसकी नियति है। भाषाकीय दृष्टि से कहीं-कहीं दृष्टि दोष के कारण भूलें खटकती हैं। यदि उसे नजरअंदाज कर देतें तो यह औपन्यासिक कृति और अधिक श्रेष्ठतम बन सकती थी। फिलहाल कुल मिलाकर यह उपन्यास अन्तरभारतीय - समसमायिक समाज का प्रतीकात्मक सत्य चित्र तो है ही।

देहात की तबाही का सबसे बडा कारण है कि उसकी उपज का कच्चा माल सस्ते भाव में 'बाजार' चला जाता है। लडके-लडकियों के रंगीन चित्र हैं। आँचलिक परिवेश अपनी सम्पन्नता के साथ उभर आया है। खेत में अबोध प्रेमी अपनी बोली-भाषा में मात्र बातें करते चले जाते हैं। यहाँ आँचलिकता की सबसे सजग सूचना भाषा और परिवेश में मिलती है। यह अवध के अंचल के समाज का यथार्थ चित्रण है।

डॉ. सूर्यदीन यादव का औपन्यासिक कथानक नवीनतम होता है। वे किसी भी परम्परा को ओढकर नहीं चलते हैं। 'चौराहे के लोग' उपन्यास एक मनोवैज्ञानिक यथार्थ अनुभव है जो अन्तर्राष्ट्रीय चौराहे के लोगो के जीवन का यथार्थ चित्रण है। वह मात्र भावावेश की एक रात की कथा नहीं बल्कि भारत के अनेक चौराहे के चेहरों की पहचान है।

औपन्यासिक शिल्प, आँचलिकता, भाषायी सौन्दर्य, सृजनात्मक कथन व जीवन के यथार्थ बोध के परिप्रेक्ष्य से यह उपन्यास सांप्रत के उपन्यासों में अलग ही उभर कर आया

है और कथा-शिल्प तथा भाषा की दृष्टि से शोधलक्षी तथा पठनीय योग्य भी है ही । उपन्यास की भाषा शैली सराहनीय है । आँचलिक और व्यावहारिक तथा पारम्परिक है, आँचलिक शब्दावली पर्याप्त प्रयुक्त है । गुजर-बसर, धरावत, उठावन, लंगडी फाँदना, चिन्भी डोडी खेलना, गुट्टी खेलना, गरुआना, मनई, पतरकी, लुंसी, लुकइया खेल, सुर्र का खेल आदि गन्दी-गन्दी गालियाँ दी जाती हैं । अंग्रेजी और फारसी की व्यवहारिक शब्दावली भी है ।

उपन्यास की भाषा-शैली बहुत स्वाभाविक है, आकर्षण और आँचलिक है । सुंदर बिम्ब और प्रतीक है । चित्रात्मक भाषा का अपना विशेष महत्व है । वर्णनात्मक शैली से कथा को विस्तार दिया गया है । हास्य-व्यग्य के पुट के साथ संस्कृत की सूक्तियाँ भी प्रयुक्त हैं, प्रेमवार्ताएँ बहुत मार्मिक हैं । उदाहरणात्मक शैली के पर्याप्त उदाहरण हैं । विवेचात्मक, कथात्मक एवं इति वृत्तात्मक शैलियाँ हैं । आँचलिक गीत-गाने भी हैं । पत्र शैली प्रयुक्त है । प्रेमा ने नहीं, प्रेमा के नाम से किसी ने रामजीत को एक लम्बा पत्र लिखा है ।

अच्छे बुरे पात्रों, कथानकों और भाषा-शैली से उपन्यास पूरा होता है । कथा का परिवेश स्वतंत्रता के प्रारंभिक दिनों का है । 'चौराहे के लोग' उपन्यास का सर्वाधिक प्रभावपक्ष इसकी प्रस्तुति है । भाषा में आँचलिक शब्दों का बाहुल्य कथ्य की प्रभावान्विति को अविवाहित करता है । ग्राम्यांजली, आँचलिक और देशज शब्दों का बाहुल्य है, कहीं-कहीं अल्प प्रयोगी या द्विलुप्तप्राय शब्दों का भी प्रयोग है । जो कथ्य में एक पारिवारिक आत्मीयता का तथा घरेलुं संबंधो का वातावरण नियत करते हैं । लेखक ने कहावतों और मुहावरों के प्रयोग से भी इस ग्राम्यांजली संस्कृति को जीवंत बनाया है । उसी तरह इस मनोवैज्ञानिक शैलीगत उपन्यास में भी आँचलिकता की सर्वोपरि प्रभाव है । यादव जी देश-परदेश के अनेक चौराहों से होते हुए अपने गाँव के चौराहे से अलिप्त रूप से जुडे रहते हैं । यह उनकी गाँव की माटी के प्रति एवं लोगों के प्रति विशेष लगाव का प्रतिफल है ।

कथाकार ने भाषा का खुला प्रयोग किया है । लोकजीवन से आने-वाली क्षेत्रीय शब्दावली को यथावत स्वीकार किया है, इसके साथ आज की प्रचलित अंग्रेजी शब्दावली को भी प्रयोग किया है । भाषा को बहते-नीर के समान उन्होंने ग्रहण किया है । कहीं बनावट नहीं है, शैली की दृष्टि से भी रचना सम्पन्न है । कहीं-कहीं किस्सागोई भी है। इनकी प्रमुख शैलियाँ हैं, आत्मकथात्मक, कथा स्मृति संचारी, प्रतीक एवं बिम्ब प्रधान, हास्य व्यंग्य, इतिवृत्तात्मक और वर्णनात्मक, गीतात्मक, पत्र, संवाद और मनोविश्लेषणात्मक।

डॉ. सूर्यदीन यादव का उपन्यास 'चौराहे के लोग' निःसंदेह मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में एक और कड़ी को जोड़ता है । यह उपन्यास प्रारम्भ से अंत तक अपनी आँचलिक एवं मनोवैज्ञानिक शैली में पाठकों को बाँधे रखता है । जब तक डॉ. यादव ने आत्मकथात्मक शैली में लिखा 'चौराहे के लोग' उपन्यास का संबंध बहुआयामी जीवन में व्याप्त उस बिंदु से है, जो विरुपता के मध्य एकता और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करता है । रचनाकार उपन्यास में अपने इस लक्ष्य का संकेत करते हुए कहता भी है कि " चौराहा किसी एक गाँव या शहर का नहीं, वह हर गाँव हर शहर के उन चेहरों से भरा रंग, बिरंगी, बहुआयामी, बहुभाषीय, भिन्न संस्कृतियों एवं परिवेशों का मिला-जुला भारतीय चित्र है - जो दरअसल मेरे मन का मानचित्र या तस्वीर है, वह स्वयं ही अनायास चित्रित हो उठा है।"[६७]

उपन्यास का ग्रामीण परिवेश भाषा और बोली में विशिष्ट अर्थवत्ता के साथ अभिव्यक्त हुआ है । परंतु कभी-कभी भाषा का यह प्रयोग वाक्य-संरचना के प्रवाह को बाधित भी करने लगता है जैसे - "माँ खाने के लिए बुलायी ।"[६८] इत्यादि इस प्रकार के प्रयोगों से बचकर भी परिवेश विशेष की भाषायी अस्मिता को बरकरार रखा जा सकता था । कहीं कोई लुकाव-छिपाव नहीं न शब्दों का आडम्बर और न उलझी हुई भाषा, भांव या शैली । किन्तु यह अवश्य लगता है कि लेखक हर चौराहे पर बिना जरुरत भी रुककर लोगों की हलचल में हस्तक्षेप करता है । लेखक चौराहे के लोगों के चेहरे को नहीं छोड पाता है तो चेहरे भी लेखक को अकेला नहीं छोड़ते । चेहरे हर वक्त पीछा करते नजर आते हैं । डॉ. दयाशंकर त्रिपाठीने अपने एक पत्र में लिखा है कि - "यह जरुरी नहीं कि एक ही उपन्यास में समाज की अधिक से अधिक समस्याओं को उभारा जाय । भाषा को आप उपन्यास गद्य के काबिल बनाएँ । आपके जितने पात्र हैं वे अक्सर काव्यात्मक भाषा में बातें करते हैं । कहीं-कहीं तो आप यह भी भूल गये हैं कि कौन-सी स्थिति काव्यात्मक भाषा को जन्म देती है ।" (कथाकार सूर्यदिन यादव, पृ. १४०)

भाषा की दृष्टि से इनका साहित्य खड़ी बोली में लिखा गया है, किन्तु उसमें तत्सम शब्दों का गांभीर्य, तद्भव, देशज, आँचलिक, प्रांतीय, एवं विदेशी शब्दों की स्वाभाविकता, सहजता एवं सरलता है । मुहावरों, लोकोक्तियों और सूक्तियों का सहज उपयोग करने में उनकी कुशलता सराहनीय है । उनकी भाषा सहज प्रतीकों और संकेतो के सहारे सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों एवं विचारो को कलात्मक ढंग से रुपायित करने में समर्थ है । दृश्य बिम्बों के प्रयोग से उसमें चित्रात्मकता आ गई है । उसमें काव्यात्मकता हैं और अलंकारिक सौन्दर्य देखते ही बनता है । उन्होंने अपनी सधी हुई लेखनी एवं मंझी हुई भाषा द्वारा साहित्य

को नई गति एवं दिशा प्रदान की है, उनकी भाषा-शैली में जो प्रवाह, शक्ति एवं नुकीलापन है । वह कम ही देखने को मिलता है ।

फिलहाल यादव जी की कथ्य-शिल्प एवं भाषा-शैली की अदा अवध के हर तरह के संघर्षो को समेटे हुए है ।

इस प्रकार तात्विक विश्लेषण के उपरांत हम कह सकते हैं कि उपन्यास कला की दृष्टि से यादव जी के उपन्यास सशक्त और सफल बन पड़े हैं । कहानीकार के रूप में उनकी प्रतिभा सूझबूझ और योगदान को प्रायः सभी विद्वान- प्रालोचकों ने बार-बार सराहा है । कथा साहित्य में पात्रों के माध्यम से यथार्थ सजीवतां एवं जीवंतता निर्माण की जाती है । यादवजी ने अपने चरित्रों को बहिरंग, अंतरंग, एवं नाटकीय शैली के समन्वय से जीवंत बनाया है । वह इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे कि व्यक्ति का बाह्य आचरण उसकी आंतरिक वृत्तियों से संचालित होता है । अतः उन्होंने आत्म विश्लेषण एवं अन्तर्द्वन्दों का भी विश्वसनीय चित्रण किया है ।

यादव जी 'जमीन' के यानी माटी के अनेको प्रकार के रूपों से परिचित कराते हैं । यहाँ पर उनकी वर्णन शैली दार्शनिक रूप से इंसान के जीवन कवन, मन से मेल खाती है ।

उपन्यास के शिल्प विधान की बात करें तो ''एक सफर के मुसाफिर' डॉ. यादवजी की उपन्यास लेखन परम्परा का नया प्रयोग है । उपन्यास में भाषा की बारीक से बारीक नूतन छबियाँ उभर आई हैं और उन नूतन छबियों का प्रयोग वे बारीक से बारीक मनःस्थिति और सौन्दर्य बोध को चित्रित करने में करते हैं ।''[६९]

• • •

संदर्भ सूचि

	कृति का नाम	पृष्ठ सं.
१.	दूसरा आँचल उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	१६०
२.	दूसरा आँचल उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	०७२
३.	माँ का आँचल उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	०१४
४.	माँ का आँचल उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	०८९
५.	माँ का आँचल उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	१५८
६.	माँ का आँचल उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	१६०
७.	माँ का आँचल उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	१३८
८.	माँ का आँचल उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	१४०
९.	माँ का आँचल उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	११०
१०.	ममता उपन्यास सं. डॉक्टर सूर्यदीन यादव	०१४
११.	ममता उपन्यास सं. डॉक्टर सूर्यदीन यादव	०२६
१२.	अँधेरा जहाँ उजाला उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	०४१
१३.	अँधेरा जहाँ उजाला उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	२२२
१४.	चौराहे के लोग उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	०२८
१५.	चौराहे के लोग उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	०२९
१६.	प्रेमस्रोत उपन्यास सं. सूर्यदीन यादव	०३२
१७.	जमीन उपन्यास सं. सूर्यदीन यादव	०३९
१८.	जमीन उपन्यास सं. सूर्यदीन यादव	०४९
१९.	जमीन उपन्यास सं. सूर्यदीन यादव	०५४
२०.	जमीन उपन्यास सं. सूर्यदीन यादव	०७१
२१.	जमीन उपन्यास सं. सूर्यदीन यादव	०९०
२२.	जमीन उपन्यास सं. सूर्यदीन यादव	१०४

२३. जमीन उपन्यास सं. सूर्यदीन यादव १०७

२४. जमीन उपन्यास सं. सूर्यदीन यादव १०७

२५. एक सफर के मुसाफिर उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०२२

२६. एक सफर के मुसाफिर उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०२४

२७ .एक सफर के मुसाफिर उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०२८

२८. एक सफर के मुसाफिर उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०३६

२९. एक सफर के मुसाफिर उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०५२

३०. एक सफर के मुसाफिर उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०५४

३१. एक सफर के मुसाफिर उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०७०

३२. एक सफर के मुसाफिर उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०७५

३३. एक सफर के मुसाफिर उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव १४४

३४. एक सफर के मुसाफिर उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव १५१

३५. साहित्यिक निबंध सं. राजनाथ शर्मा ५७७

३६. आँचलिक कथासर्जक सूर्यदीन यादव सं. श्रीमती कांति अय्यर ०२२

३७. आँचलिक कथासर्जक सूर्यदीन यादव सं. श्रीमती कांति अय्यर ०२७

३८. अँधेरा जहाँ उजाला उपन्यास सं. सूर्यदीन यादव ०६७

३९. आँचलिक कथासर्जक सूर्यदीन यादव सं. श्रीमती कांति अय्यर ०४९

४०. आँचलिक कथासर्जक सूर्यदीन यादव सं. श्रीमती कांति अय्यर ०५०

४१. जमीन उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव

४२. जमीन उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०३१

४३. माँ का आँचल उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव १३८

४४. दूसरा आँचल उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव १०८

४५. माँ का आँचल उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०९१

४६. आँचलिक कथा सर्जक सूर्यदीन यादव सं. श्रीमती कांति अय्यर ०३६

४७. आँचलिक कथा सर्जक सूर्यदीन यादव सं. श्रीमती कांति अय्यर ०३५

४८ चौराहे के लोग उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०३२

४९. प्रेमस्रोत उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०१४

५०. प्रेमस्रोत उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०१८

५१. अँधेरा जहाँ उजाला उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०४३

५२. कथाकार सूर्यदीन यादव सं. डॉ. मायाप्रकाश पांडे/डॉ. दयाशंकर त्रिपाठी ०७४

५३. ममता उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०७३

५४. ममता उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०६३

५५. अँधेरा जहाँ उजाला उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०७३

५६. कथाकार सूर्यदीन यादव सं. डॉ. मायाप्रकाश पांडे—डॉ. दयाशंकर त्रिपाठी १०८

५७. माँ का आँचल उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव १३८

५८. आँचलिक कथासर्जक सूर्यदीन यादव सं. श्रीमती कांति अय्यर ०१८

५९. एक सफर के मुसाफिर उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०२२

६०. एक सफर के मुसाफिर उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०३०

६१. दूसरा आँचल उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव १२०

६२. दूसरा आँचल उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०१४

६३. दूसरा आँचल उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव १११

६४. आँचलिक कथा सर्जक सूर्यदीन यादव सं. श्रीमती कांति अय्यर ०२२

६५. आँचलिक कथा सर्जक सूर्यदीन यादव सं. श्रीमती कांति अय्यर ०२०

६६. अँधेरा जहाँ उजाला उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०६७

६७. कथाकार सूर्यदीन यादव सं. डॉ. मायाप्रकाश पांडे, डॉ. दयाशंकर त्रिपाठी ११९

६८. चौराहे के लोग उपन्यास सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०१४

६९. साहित्य परिवार पत्रिका अंक-७ सं. डॉ. सूर्यदीन यादव १२६

• • •